॥ श्रीः ॥

ज्ञान भण्डार

साहित्य-विभाग

लेखक व प्रकाशकः—

श्री स्वामी पूर्णानन्दतीर्थ

भिनगादण्डी आश्रम

लंका, बनारस।

५०० प्रतियां

श्री विश्वनाथजी

* ॐ *
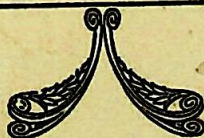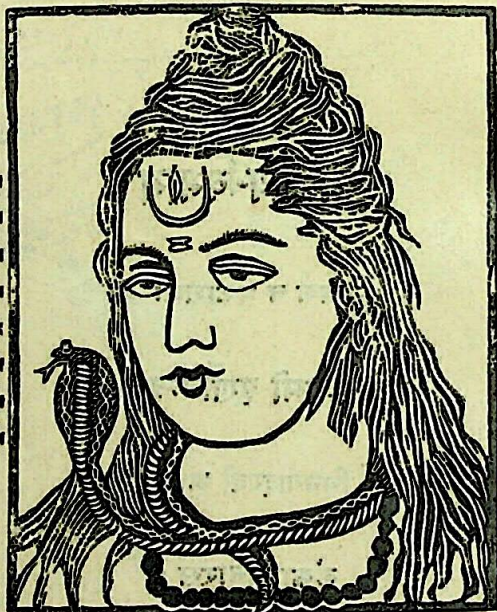
ज्ञान भण्डार साहित्य

पहला भाग

भद्रं कर्णेभिःशृणुयामदेवा, भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवाँसस्तनुभिर्व्यशेमहिदेवहितं यदायुः ॥१॥

अर्थः—अपने कानों से काल्याणकारक सुनिये और आंखों से कल्याण देखिये, पूजन करने वालों की रक्षा करने वाला दृढ़ अङ्गों से स्तुति करने वालों को देवता दीर्घायु प्रदान करने वाले हों।

ॐ विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाट् ।
विघ्न व्यालकुलोभिमर्दगरुडो विघ्नेभपंचानन ॥
विघ्नोत्तुंगगिरी प्रभेदनपविर्विघ्नाम्बुधौ वाडवौ ।
विघ्ना घौघघनप्रचण्डपवनोःविघ्नेश्वरः पातुनः ॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

विघ्न रूपी अन्धकार को हटाने में सूर्य के सदृश विघ्न रूपी वन में अग्नि के सदृश. विघ्न रूपी सर्प कुल के मर्दन करने में गरुड़ के सदृश, विघ्न रूपी हाथी के लिये सिंह के सदृश विघ्न रूपी ऊँचे क तोड़ने के लिये वज्र के सदृश, विघ्न रूपी पाप समूह के मेघ क उड़ाने में प्रचण्ड वायु सदृश, विघ्नेश्वर श्रीगणेश हमलगों का पालन करें।

T

❀ हरि ॐ तत्सत् ❀

श्रीसद् गुरुभ्यो नमः

प्रस्तावना

प्रिय पाठक गण !

आज काल भारत वर्ष मां अविद्याए साम्राज्य स्थाप्युं छे, ने विद्वान वग छे पण बहु थोड़ा छे ने जे छे ते पेट निर्वाहना काम मां मच्यारहे छे तेथी निवृत्ति परायण तो बहुत थोड़ा पुरुषो जोवा मां आवे छे।

ने तेमांपण धार्मिक वृत्ति ना तो अत्यन्त थोड़ा ने तेमां पण परोपकार साथे आस्तिक्य बुद्धि वाला तो कोइ विरलाज होयछे।

आ शरीर यतिनी स्थिति मां (दंडी संन्यासी तरीके) होवाथी श्री काशीजीथी द्वारकां यात्रा प्रसंगे आवेल ते यात्रा करी पाछा फरतां वच्चे जामनगर जेयुं धार्मिक स्थल जाणीने चातुर्मासनो निश्चय कर्यो।

अहीं आवीने पंडित वर्गनी मुलाकात लेतां अहीं छेवटे हाथी भाइ शास्त्री जी पूण श्रद्धालु परोपकारी तेमां वयोवृद्ध तेमज ज्ञान वृद्ध जाइने चित्त बहु प्रसन्न थयुं।

त्यार बाद तेओ श्रीनुं प्रेमाल हृदय जाणी आ लखेल पुस्तक छपाववा इच्छा वतावी तो ते पूरी खुशीथी स्वीकारी बादतेओ श्रीनोकैलासवास थइजतां बंधरमु।

T

पीछे श्री काशीजी आकर यह पुस्तक चन्दा करके छपाने का विचार किया।

परन्तु मामूली रकम मिलने से छप नहीं सकता इसलिए हम धनबाद गये, वहां के सेठ बड़े धार्मिक वृत्ति के मिल गये। उन्होंने अपना नाम छापने को मना किया है इसलिये हम नाम नहीं दे सकते किन्तु वे बड़े श्रद्धालु हैं और विद्वान हैं, इतना कह सकते हैं कि आपने ये पुस्तक छपा देने का वचन दिया है इसलिये आपको धन्यवाद देते हैं।

मानुष्ये मतिदुर्लभा पुरुषता पुरुस्त्वे पुनरविप्रता।
विप्रत्वे बहुविद्यनाति गुणिता विद्यायतोर्थज्ञिता॥
अर्थज्ञस्य विचित्र वाक्य पटुता तत्रापि लोकज्ञता।
लोकाज्ञस्य समस्त शास्त्र विदुषो धर्मेमतिदुर्लभा॥

अर्थ—मनुष्य जन्म तेमां बुद्धिशाली ने तेमां पुरुषता ने तेमां ब्राह्मणपणु ने तेमां विद्वानने तेमां गुणवान ने तेमां अर्थजाणवावाला तेमां अति चतुर बोलवावाला तेमां सर्व जनता ने प्रिय ने तेमां सर्व शास्त्र जाणनार नेतेमांपण धर्मिष्ट बुद्धि ते अति दुर्लभछे। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

आ पुस्तकमां प्रथम भाग सहित्यनो राखी, बीजो भाग मनुस्मृति मांथी वानप्रस्थ स्थितिनो चितार आपी त्रीजोभाग वेदान्तनो (उपनिषदो श्रुति बचनोनो) राखी चौथोभाग जीवनमुक्ति विवेकनो राखी छेल्ले सन्यस्तनो जरा चितार आपीने संन्यासीना भिक्षा प्रकरणनो बतावी ने आ पुस्तकनी समाप्ति करवामां आवेलछे। आथी

T

करो भारतवर्षमां जे अगाउ सद्गुणों हता ते नष्ट जेवातथा जाणी ने तेमां अजवालु पाडवा धायु छे। यदि बहु जनता दीन दुःखांत, पराधीन, दरिद्रि तथा अनर्थकारी होवाथी ते कइंपण छुटीने सद्गुण ग्राही थाय तो मारोश्रम सफल थयो गणाय एम मानु छुं।

कदी वाचक वर्गने कोइ श्लोकमां अथवा अर्थमां खामी जणायतो तेने विषे नम्र याचना छे के संपूर्ण गुणवाला दोष रहित तो एक परमात्माज छे तो क्षन्तव्ययाचु छुं आमां सुधारो वधारो करवानी सत्ता लेखकने स्वाधीन छे।

आ पुस्तकना सर्वहक लेखकने स्वाधीन छे तोपण कोइ परोपकारी पुरुष बिना मुलये बाटणी करवाने कबूल करशेतां तेने छपाववानी लेखित परवानगी खुशि थो आपवा मां आवशे।

ॐ पूर्ण मदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्ण मेवा वशिष्यते ॥ १ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

श्री १०८ परिब्राजकाचार्य श्रीगोविंदानंदजी तीर्थ

पाद पंकजरजोक्ति

लेखक—स्वामो पूर्णानन्द तीर्थ

मुमुक्षु भुवन अस्सी घाट, काशी।

हाल भिनगाश्रम दण्डी आश्रम पो०—लङ्का, बनारस।

T
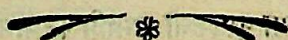
श्री स्वामी पूर्णानन्दजी तीर्थ

मुमुक्षु भुवन, अस्सी घाट, काशी।

हाल–भिनगाश्रम, दण्डी आश्रम, पो० लङ्का, बनारस।

T

ज्ञान भंडार ।

साहित्य प्रकरण भाग १

उत्तमः चिंतितं कुर्यात् मोक्तकारी तु मध्यमः ॥
अधमोः अश्रद्धया कुयात् अकर्तुः उच्चरितः पितु ॥१॥

अर्थ—पिता की इच्छा से जो काम पूरा करता है, वह पुत्र उत्तम है। पिता की आज्ञा मानकर जो कार्य करे वह पुत्र मध्यम है। अश्रद्धा से करने वाला पुत्र अधम है। जो कहने पर भी नहीं करता वह पुत्र विष्टा के समान है।

स्वल्पं स्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थिकं ।
श्वा लब्धा परितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये ॥
सिंहो जंबुकमंकमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विपं ।
सर्वः कृच्छगतोपि वांच्छति जनः सत्वानुरूपं फलं ॥२॥

कुत्ता बिना मांस और बिना खून की हड्डी लेकर उसी में सन्तोष मानता है परन्तु उसमें उसकी क्षुधा तृप्त नहीं होती लेकिन सिंह अपने हाथ में आये हुये शृगाल को

T

छोड़कर हाथी को ही मारता है इसी तरह श्रेष्ठ पुरुष क्षुद्र कर्म को छोड़ कर उत्तम काम करते हैं।

ददतु ददतु गालीं गालियमंतो भवन्तः।
वयमपि तदभावात् गालिदाने समर्था॥
जगति विदितमेतद्दीयते यस्य यद्धै।
नहि शशकविषाण कोऽपि कस्मै ददाति॥३॥

अर्थ—यदि आप गाली देते हों तो दें, आप गाली के ही धनी हैं, क्यों कि जिसके पास जो वस्तु होती है वह उसको ही दान करता है, क्यों कि आज तक खरगोश (सियाल) का सिंग किसी ने दान नहीं किया।

न कश्चिच्चण्डकोपाना मात्मीयो नाम भूभुजाम्॥
होता रमपि जुव्हानं स्पृष्टो दहति पावकः॥ ४॥

अर्थ—उग्रकोप वाले राजा का कोई भी निजी आदमी नहीं होता, क्यों कि इसी तरह से अग्नि हवन करने वाले को भी छूने से जला देती है।

बुभुक्षितः किन करोति पापम् क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति॥
आख्याहि भद्रे प्रियदर्शनस्य न गंगदत्तः पुनतरेति कूपम्॥५॥

अर्थ—भूखा मनुष्य क्या दोष नहीं करता है यदि किसी का मनुष्य मर गया हो तो उसमें करुणा नहीं होती। हे भद्रे!

T

हे दर्शनीया गंगदत्त सब कुछ करके भी कुयें में नहीं जायगा यह कह देना ।

स्त्री विनश्यतिरूपेण ब्राह्मणो राजसेवया ॥
गावो दूरप्रचारेण हिरण्यं लोभलिप्सया ॥ ६ ॥

अर्थ—अतिरूपसे स्त्री का नाश होता है । राज सेवा करने से ब्राह्मण धनका नाश होता है गऊ को दूर चराने से और पैसे केलोभ से नाश होता है ।

स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि भुजंगमः ॥
हसन्नपि नृपो हन्ति मानयन्नपि दुर्जनः ॥ ७ ॥

अर्थ—हाथी स्पर्श करने वाले को मारता है और सांप सूंघते ही काटता है राजा हंसता हुआ भी मार देता है । दुर्जन से अगर मान भी करो तो भी मार देता है।

भैरवी त्विमला देवी जगन्नाथस्तु भैरव।
प्राप्ते भैरवीं चक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः॥
समाप्ते भैरवी चक्रे सर्वेवर्णा पृथक् पृथक् ॥८॥

अ० लक्ष्मी देवी भैरवी है जगन्नाथ जी भैरव है भैरवी चक्रमें फंसकर जब वर्ण द्विजाति हो जाते हैं बाद में जब वह भैरवी चक्रसे छूटते हैं तो सब वर्ण पृथक २ हो जाते हैं ।

अज्ञस्यार्थं प्रबुद्धस्य सर्वं ब्रह्मेति यो वदेत् ॥
महानिरयजालेषु स तेन निरयो जितः ।९॥

T

अशुद्ध अन्तःकरणवाला तथा विषयासक्त मनुष्य कर्म का अधिकारी है। जो अर्धदग्ध अज्ञानी पुरुष है उसको "सर्वं खल्विदं ब्रह्म ॥ को उपदेश नहीं देना चाहिये वह उसका अधिकारी नहीं। जो अनाधिकारी पुरुष को उपदेश करता है वह उसको नरक में गिराता है ॥ ९ ॥

गौरतेजो विना यस्तु श्याम तेज समर्चयेत् ॥
जपेन वा ध्यायतेवापि सभवेत् पातकी शिवे। १० ॥

शक्ति के विना जो श्याम नाम स्मरण करता है। [राधा के नाम के विना केवल कृष्ण नाम का स्मरण करता है) वह पातकी होता है। इसी प्रकार सर्व देवों के नाम के साथ उनकी शक्ति का नाम भी लेना चाहिये ॥१०॥

जन्मन्यंतरेराजन् ! सर्वं भूत सुहृत्तमः ॥
भूत्वा द्विज वरस्तं वै मामुपैस्यसि केवलं ॥११॥

हे राजन् ! तुम अब भविष्य जन्म में सर्व प्राणियों के उत्तम मित्र (ब्राह्मण के घर) जन्म लेकर अद्वैत स्वरूपों को प्राप्त करोगे ॥११॥

वस्त्रैश्च भूषणैश्चैव शोभा स्यात् वारयोषिताम् ।
विद्यया तपसा चैव राजन्त द्विजनन्दना ॥१२॥

वस्त्र और आभूषणों से वेश्याओं की शोभा होती है। परन्तु ब्राह्मण तो विद्या और तपसे ही शोभित होते हैं ॥१२॥

T

अत्यन्तमतिमेधावी त्रयाणामेकमश्नुते ॥
अल्पायुषो दरिद्रोवा ह्यनपत्यो न संशयः ॥१३॥

अत्यन्त बुद्धिमान् को तीनों वस्तुओं में से एक वस्तु भी प्राप्ति होती है। जैसे या तो अलपायुषी होगा, दरिद्र होगा व सन्तान हीन होगा। १३॥

गंगाजलेन पक्वान्नं देवानामपि दुर्लभं ॥
तीर्थे माधुकरी भिक्षा पवित्राणि युगे युगे ॥१४॥

गङ्गा जलसे पका हुआ अन्न देवताओं को भी दुर्लभ है, इसलिये तीर्थ स्थानों पर माधुकरी भिक्षा प्रत्येक युग में पवित्र है ॥१४॥

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यपूजाऽव्यतिक्रम ॥
त्रीणितत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥१५॥

जहां अपूज्यो का मान और पूज्य का अनादर होता है। वहां दुरभिक्ष, मरण और भय तीनों बातों से एक बात होती हैं ॥ १५ ॥

उत्तमा सहजा वृत्तिः मध्यमा ध्यानधारणा
निकृष्ट शास्त्र चिंताचतीर्थ यात्रा धमा धमः ॥ १६ ॥

अर्थ – जिसको स्वाभाविक समाधि लग जाती है वह उत्तम, जो ध्यान धारणा, करे वह मध्यम, शास्त्र चिंतन करने वाले निकृष्ट तथा तीर्थयात्रा सबसे अधम से अधम है॥१६॥

T

भोगे रोग भयं कुले च्युति भयं वित्ते नृपालाद्भयं ।
मानेदैन्य भयंम् बलेरिपु भयं रूपे जराथा भयंम् ॥
शास्त्रे वादि भयम् गुणे खल भयम् काये कृतान्ताद् भयंम् ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणाम् वैराग्यमेवाभयम् १७

भोग में रोग का भय है, कुल में नाश का भय है। द्रव्य में राजा का भय है। मान में दीनता का बल में शत्रु का, रूप में वृद्धावस्था का भय, शास्त्र में वादिका भय, गुण में खल का भय, काया को मृत्यु का भय रहता है। अर्थात् संसार की सब वस्तुएं भय ग्रस्त हैं केवल वैराग्य ही निर्भय है ॥१७॥

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्ति-हीनाः सुरागिणः ॥
तेप्यज्ञानं तयानूनं पुनरा यांति यांति च ॥१८॥

ब्रह्म वार्ता में कुशल, तथा वृत्ति हीन रागी औरते अज्ञानी पुरुष बारंबार संसार में जन्मता और मरता है ॥१८॥

पाताले चान्तरिक्षे दशदिशि गगने सर्वशैले समुद्रे ।
भस्मेकाष्ठे च लोष्ठे क्षितिजलपवने स्थापरे जंगमेवा ॥
वीजे सर्वौषधीनामसुरसुरपतौ पुष्पपत्रे तृणाग्रे ।
एकोऽप्यापिशिवोऽयं इतिवदति हरिर्नास्ति देवो द्वितीयः॥१९॥

पाताल में व्योम, में दशो दिशाओं में, पर्वतों में समुद्र में

भस्ममें, काष्टमें, लोष्टमें पृथ्वी जलवायुमें स्थावर जंगमके सर्वौषधिओं के मूल में देवदानवो में पुष्प पत्र तृणो में एक शिव ही व्यापक है अन्य कोई भी देव नहीं यह श्री विष्णु भगवान् कहते हैं ॥१९॥

एकोदेवकेशवो वा शिवो वा एकं मित्रं भूपतिर्वायत्तिर्वा ॥
एकोवासः पत्तनेवा वनेवा एका नारी सुंदरी वादरिवा॥२०॥

एकही देवता से मन लगाना चाहिये, चाहे कृष्ण हों चाहे शिव। एक ही मित्र करना चाहिये चाहे वह राजा हो चाहे संन्यासी। एक ही जगह स्थिर होकर रहना चाहिये चाहे वह नगर हो या वन अपनी एक ही स्त्री से प्रेम करना चाहिये चाहे वह सुन्दरी हो या चाहे पहाड़ की कन्दरा हो ॥ २० ॥

यदा किञ्चिदज्ञोऽहं द्विपइव मदान्धः समभवं।
तदासर्वज्ञोऽस्मी त्यभवदवलिप्तं मम मनः ॥
यदाकिंचित्किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं ।
तदामूर्खोऽस्मीति ज्वरइवमदोमे व्यपगतः ॥२१॥

जब मैं मुर्ख था तो हाथी की तरह मदान्ध था। और मेरे मनमें यह । गर्व था, कि मैं सर्वज्ञ हूं। इसके बाद में जब थोड़ा २ पण्डितों के पास से ज्ञान प्राप्त किया तो "मैं मूर्ख हूँ" यह जान कर मेरा मद ज्वर की तरह उतर गया ॥२१॥

ब्राह्मणस्यतु दे होयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ।

T

इह कष्टाय तपसे प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ।।२२।।

ब्राह्मण की यह देह क्षुद्र कामों के लिये नहीं है। अपितु इस संसार में कष्ट साध्य तप करके बाद में अन्त मोक्ष) सुख प्राप्त करने के लिये है ।।२२।।

न चेन्द्रस्य सुखं कश्चित् न सुखं चक्रवर्तिनः ।।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्त जीविनः ।।२३।।

इन्द्र को भी सुख नहीं हैं, चक्रवर्ती राजा को भी कोई सुख नहीं, परन्तु एकान्त वासी विरक्त मुनि सर्वको सुख सम्पन्न है ।।२३।।

तद् रुद्राक्षे वाक् विषये कृते दश गोदानफलं भवेत। श्रुति

रुद्राक्ष शब्द उच्चारण मात्र से दश गौदान का फल मिलता है। श्रुतिः ।। २४ ।।

सुखमैन्द्रिकंराजन्स्वर्गे नरक एवच ।।
देहिनां यद्यपादुखं तस्मान्नेच्छयेततद्बुधः ।।२५।।

दत्तात्रय कहते हैं कि हे राजन्! विना उद्यम किये भी दुःख प्रारब्ध के बल से स्वयं प्राप्त होता है। उसमें किसी भी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार स्वर्ग में या नरक में कहीं भी होवे इन्द्रिय सुख भी स्वयं मिलता है। इस लिये ज्ञानी पुरुष को सुख के लिये प्रयत्न नहीं करना चाहिये ।।२५।।

T

न धर्मशास्त्रं पठतीतिकारणं न चापिवेदाध्ययनंदुरात्मनः ॥
स्वभावएवात्रतथातिरिच्यते यथाप्रकीत्यांमधुरंगवांपयः ॥२६॥

शास्त्र पठनका कोई विशेष कारण नहीं, क्योंकि दुष्ट पुरुष वेदाध्यन करके भी मनोनुकूल करता है। जैसे की गाय का स्वाद दुग्ध स्वाभाविक मधुर होता है ॥२६॥

विश्वेशो जनको उमाच जननीगंगाच मातृस्वसा ।
ढुंडी भैरव दंडपाणि सदृशा ज्येष्ठामम भ्रातर ॥
सा काशी मणिकर्णिका च भगिनी जाया ममेयं मतिः ।
सत्कर्माणि सुता सदैव शुभदा काश्यं कुटुम्ब मम ॥२७॥

काशी विश्वनाथ मेरे पिता, उमा माता, तथा गङ्गा मौसी हैं, ढुण्ढिराज भैरव, दंडपाणि जैसे मेरे बड़े भाई हैं। काशी मणिकर्णिका मेरी बहन हैं। मेरी बुद्धि स्त्री है। सत्कर्म मेरा पुत्र इस तरह शुभदायक काशिमें मेरा सम्पूर्ण कुटुम्ब है ॥२७॥

श्री गौर्याः सकलार्थदं निजपदांभोजेन मुक्तिप्रदम् ।
प्रौढ़ं विघ्नवनं हरन्तमनघं श्री धुन्डी तुण्डा सीना ॥
वंदे चर्मकपालिकोपकरणैः वैराग्यसौख्यातारम् ।
नास्तीति प्रदिशन्त मन्त विधुरं श्री काशिकेशंभजेत् ॥ २८ ॥

श्री गौरी सम्पूर्ण सिद्धि देनेवाली हैं, उनके पाद मुक्तिप्रद हैं ढुंढिराज मनके भयंकर पापरूपी जंगलको नष्ट करने वाले हैं।

जो हाथमें कपाल का सुन्दर खप्पर लिये शंकर को वन्दन करते हैं। वैराग्य परम सुख है, न इसका अन्त ही है इस अनन्त सुख को देने वाले भगवान् शंकर को भजो ॥२८॥

प्रातर्वैदिक-कर्मतः तदनु सत् वेदान्तसंचिंतया ।
पश्चाद् भारत-मोक्ष धर्म-कथया वासिष्ठ-रामायणात् ॥
सौर्य भागवतार्थ तत्त्व कथया रात्रौ निदिध्यासनात् ।
कालो गच्छतु न शरीरमरणं प्रारब्ध कंठार्पितम् ॥२९॥

प्रातः काल वैदिक कर्म कर वेदान्तका चिन्तन करो तदनन्तर महाभारत मोक्षधर्म की कथा योग वाशिष्ठ और रामायण पढ़े। सांयं काल में भागवत तत्त्व की कथा और रात्रि में निदि ध्यासन करे। इस प्रकार समय व्यतीत करने वाले का मरण नहीं होता, क्योंकि उसके गलेमें प्रारब्ध रूपी मालार है ॥२९॥

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीकलत्रादिषु भौमइज्यधी ॥
यत्तीर्थ बुधिः सलिलेन कर्हिचित्जनेस्वभिज्ञे तुसएव गोखरः ३०

जो शरीर को आत्मा मानता है उसी प्रकार अपनी स्त्री है। पृथ्वीके पदार्थ पाषाण मूर्त्ति का आदि में पूज्य बुद्धि करता है तथा जल में तीर्थ बुद्धि रखता है। लेकिन कभी किसी भी महापुरुष में पूज्य बुद्धि तथा आत्म स्वरूप नहीं रखता उसे समझिये कि गऊओं में गधा मिलगया ॥३०॥

T

भावाद्द्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्द्वैतं न कर्हि कचित् ॥
सर्वत्रद्द्वैतं कुर्यात् न द्द्वैतं गुरुणा सह ॥३१॥

सर्वदा भावना से अद्वैत करना, परन्तु क्रियामें अद्वैत भाव नहीं करना। अन्य सब बातों में अद्वैत भाव ना रखना, मगर गुरु के साथ सर्वदा द्वैत भावना रखना ॥३१॥

ब्रह्मचर्याद्धि ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते ॥
एवमाहुः परेलोके ब्रह्मचर्यविदो जनाः ॥३२॥

ब्राह्मण में ब्राह्मणत्व ब्रह्मचर्य पालन करने से आता है। परलोक में ब्रह्मचर्य वेत्ताओ ने यह बात कही ॥३२॥

नास्तियोगं विना सिध्धिर्नवा सिध्धिं विना यशः ॥
नास्ति लोके यशो मूलं ब्रह्मचर्यात् परंतपः ॥?॥३२

योग विना सिद्धि नहीं मिलतो। सिद्धि विना जगत में यश नहीं मिलती। इस लोक में निर्मल यशरूप ब्रह्मचर्य से अन्य कोई श्रेष्ठ तप नहीं। अर्थात् ब्रह्मचर्या ही सब व्रतों का मूल है ॥३३॥

मार्कंडेया वटे कृष्णे रौहिणेये महोदधौः ॥
इंद्रद्युम्ने कृतेस्नाने पुनर्जन्म न विद्यते ॥३४॥

मारकंडेय वटके नीचे कृष्ण रोहिणी और सागर, इन्द्रद्युम्न में स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता ॥३४॥

T

मल्लानामशनिः नृणाम् नरवरः स्त्रीणांस्मरोमूर्तिमान् ।
गोपानांस्वजनेऽसतांक्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोशशुः ॥३ ॥
मृत्युर्भोजपतेर्विराड विदुषां तत्वं परं योगिनाम् ।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥३५॥

मल्लशाला में बलभद्र के साथ पहुंचने पर भगवान् कृष्ण मनुष्यों को नर श्रेष्ठ, स्त्रियों के मूर्तिमान् कामदेव गौवों को स्वजन दुष्ट राजाओं को, शासन करने वाला, जो वृद्ध पिता के थे उन्हें शिशुरूपमे कंस को मृत्यु रूप में, विद्वानों को विराट रूप में योगियों को परम तत्वरूप में वृष्णी भक्तों को बड़े देव के रूप में बलभद्र के साथ मण्डप में गये । तब दिखायी दिये ॥३५॥

श्री हिमानार्थवासात्साचाऽपि परिपंथिनि ॥
ब्राह्मी श्री सुदुभा श्री हि प्रज्ञाः हिंनिन क्षत्रियः ॥१॥३६

हे क्षत्रिय श्रेष्ठ । लक्ष्मी के सहवास से सुख तथा मान तो मिलता है, परन्तु वह परलोक का नाश करती है । और ब्राह्मी लक्ष्मी अज्ञानी को मिलनी कठिन है ॥३६॥

छित्वा पाशमपास्य कूटर चनां भंक्त्वा बालाद् वा गुरां ।
पर्यन्ताग्निः शिखाकलाप जटिला मुत्प्लुत्य धावमृगः ॥
व्याधानां शरगोचरादति जवे नोत्प्लुत्य गच्छन्नथो ।
कूपान्तः पतितः करोतुविमुखे किंवाविधौपूरुषः ॥३७॥

T

पास का छेदन करके कूट रचना वागुरा को तोड़कर चारों ओर से जाज्वल्यमान अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं को उल्लघन करके दौड़ता हुआ मृग व्याधों के वाणों के समुख से भी बचकर अति शीघ्रता पूर्वक जाता हुआ किसी भयानक कूप में गिर पड़ा, हाय, भाग्य के विमुख होने पर पुरुष क्या करे?

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च ॥
दुःखितैः संप्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति ॥३८॥

मूर्ख शिष्य को उपदेश देने से, दुष्ट स्त्री का पोषण करने से दुखी मनुष्यों के साथ व्यवहार से पण्डित भी दुःखी होता है ॥३८॥

दुष्टा भार्या शठं मित्रं मृत्युश्चोत्तर दायकः ॥
स सर्पेच गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः॥३९॥

दुष्टभार्या, शठमित्र और सन्मुख उत्तर देनेवाला नौकर तथा जिसघर में सर्प रहता हो उस घर में रहना मृत्युके तुल्य ही है ॥३९॥

आपदर्थे धनं रक्ष दारान् रक्षेद्धनै रपि ।
आत्मानं सततं रक्षे दारैरपि धनैरपि ॥ ४० ॥

आपत्ति के लिए द्रव्य का रक्षण करना; धन खर्च करके भी स्त्री की रक्षा करे। आत्म रक्षार्थ स्त्री और धन दोनों का उपयोग करे ॥ ४० ॥

यस्मिन्देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बांधव ।
न च विद्या गमोऽप्यस्ति वासं तत्र न कारयेत् ॥४१॥

जिस देश में न मान हो, न सुवृत्ति ही हो, न बांधव हों, तथा विद्या बृद्धि का साधन भी न हो वहां वास नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पंचमः ।
पंच यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ॥ ४२ ॥

जहां धनिक, श्रोत्रिय, राजा, नदी, और वैद्य यह पांचों न हों वहां एक दिन भी वास न करे ॥ ४२ ॥

लोक यात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्य त्याग शीतता ।
पंच यत्र न विद्यंते न कुर्या तत्र संगतिम् ॥ ४३ ।

जिनमें (जहां) निर्वाह साधन, दुर्गुणों का भय, लज्जा, कौशल्य और उदारता यह पांचो न हों वहां संगत न करे ॥४३॥

जानिथात् प्रेषणे भृत्यान् बांधवान् व्यसना गमे ।
मित्रं चापत्ति कालेतु भार्यां च विभव क्षये ॥४४॥

आज्ञा देने से नौकर की दुःख आने पर बन्धुओं की आपत्ति आने पर मित्र की और धन नाश होने पर स्त्री की परीक्षा होती है ॥७॥

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रु संकटे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठत्ति स बांधवः ॥ ४५ ॥

T

चित्त की व्यग्रता, दुःख आने पर दुष्काल में, शत्रु से लड़ने में, राज दरबार और स्टेशन में जो साथ दे वही बान्धव हैं ॥ ४५ ॥

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवम् परि सेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च ॥ ४६॥

जो मनुष्य निश्चित का त्याग कर, अनिश्चित का सेवन करता है । उसका निश्चित पदार्थ तो नष्ट हो जाता है तथा अनिश्चित तो नष्ट है ही । ४६ ॥

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृङ्गिणां तथा ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥ ४७ ॥

गहरी नदियों का, हथियार वाले मनुष्य का, नख वाले पशु का सींग वाले जानवरों का, स्त्री और राजकुल का कभी विश्वास नहीं करना ॥ ४७ ॥

विषादप्यमृतं प्राप्य,ममेध्यादपि काञ्चनम् ।
नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥४८॥

विष से अमृत अशुद्ध जगह का सुवर्ण, नीच से भी उत्तम गुण और दुष्कुलसे भी स्त्री रत्न ग्रहण कर लेना चाहिये ॥४८॥

स्त्रीणां द्विगुण आहारो लज्जा चापि चतुर्गुणा ।
साहसं षड्गुणं चैव कामश्चाष्ट गुणः स्मृतः ॥४९॥

T

स्त्री में पुरुष से द्विगुण आहार, चतुर्गुण लज्जा छः गुणा साहस और आठ गुणा काम रहता है ॥४९॥

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ।
अशौचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥५०॥

स्त्री में झूठ बोलना, साहस, माया, मूर्खता, कृपणता अशुद्धपना, निर्दयहीनता ये स्वाभाविक गुण रहते हैं ॥५०॥

भोज्यं भोजन शक्तिश्च रतिशक्तिर्वराङ्गना ।
विभवो दानशक्तिश्च नाल्पंश्य तपसः फलम् ॥५१॥

भोग्य, भोग्य शक्ति, सुन्दर स्त्री रतिशक्ति । धन और दान शक्ति यह सब बातें होना थोड़े तप का काम नहीं । अर्थात् बड़ी तपस्या के बाद यह वस्तुएं मिलती हैं ॥५१॥

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छंदानुगामिनी ।
विभवेमश्च संतुष्टस्तस्य स्वर्ग इहैवहि ॥५२॥

जिसका आज्ञाकारी पुत्र हो, आज्ञानुसार चलने वाली स्त्री, ईश्वरेच्छानुकूल प्राप्त पदार्थों में सन्तोष रखने वाले पुरुष के लिये यही स्वर्ग है ॥५२।

ते पुत्रा ये पितृ भक्ताः सपिता यस्तु पोषकः ।
तन्मित्रं यत्र विश्वास. सा भार्या यत्र निर्वृतिः ॥५३॥

वह ही पुत्र सुपुत्र हैं जो पिता के भक्त हैं, जो पोषण करे वही पिता हैं । जिसमें विश्वास हो वही मित्र है जिससे सुख मिले वही स्त्री है ॥ ५३।

T

परोक्षे कार्यहंतारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ॥
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भम्पयोमुखम् ॥ ५४ ॥

पीछे जो कार्य नाश करने को घात लगाता हो, तथा सन्मुख मीठा बोले, उस आदमी को, ऊपर दुग्ध से आच्छन्न हलाहल से भरे हुए घड़े की तरह त्याग देना चाहिये ॥ ५४ ॥

न विश्वसेत् कुमित्रे च मित्रे चापि न विश्वसेत् ॥
कदाचित् कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ॥ ५५ ॥

कुमित्र का कभी भी विश्वास न करो तथा मित्र का भी पूर्ण विश्वास न करो। क्योंकि कभी मित्र प्रतिकूल तथा क्रोधित होकर अपना सब गुप्त रहस्य प्रकट कर सकता है ॥ ५५ ॥

मनसा चिन्तितं कार्यं वाचा नैव प्रकाशयेत् ॥
मन्त्रवद्रक्षयेद्गूढं कार्यं चापि नियोजयेत् ॥ ५६ ॥

मनसे विचारे हुए कार्य को वाणी से कभी मत कहो। उसे मंत्र के सदृश छिपाये रहो और गुप्त तौर पर ही कार्य सिद्धि करलो ॥ ५६ ॥

कष्टं च खलु मूर्खत्वं कष्टं च खलु यौवनम् ॥
कष्टात्कष्टतरञ्चैव परगेहनिवासनम् ॥ ५७ ॥

मनुष्य की मूर्खता भी दुःख देने वाली है, यौवन भी कष्ट दायक है। परन्तु दूसरे के घर में वास करना घोर दुःखकर है ॥ ५७ ॥

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ॥
साधवो नहि सर्वत्र चंदनं न वने वने ॥ ५८ ॥

सब पर्वतों में माणिक्य नहीं होते और न प्रत्येक हाथी में गजमुक्ता ही होती है। इसी प्रकार न सर्वत्र साधु ही होते हैं और न सब वन में चन्दन ही होता है ॥ ५८ ॥

पुत्राश्च विविधैः शीलैर्नियोज्याः सततं बुधैः ॥
नीतिज्ञाः शीलसंपन्ना भवन्ति कुलपूजिताः ॥ ५९ ॥

विद्वज्जनों को सर्वदा अपने पुत्रों को नाना प्रकार के शीलों (गुणों) में लगाना चाहिये, क्योंकि नीतिज्ञ और शील सम्पन्न पुरुष ही कुल पूज्य बनता है ॥ ५९ ॥

माता रिपुः पिताशत्रुर्बालो येन न पाठ्यते ॥
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥ ६० ॥

जिन्होंने अपने बालक को नहीं पढ़ाया वे माता पिता शत्रु है। वह बालक विद्वत् समाज में, हंसो में बगुलों की तरह, शोभित नहीं होता ॥ ६० ॥

लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः ॥
तस्मात् पुत्रश्च शिष्यश्च ताडयेन्नतु लालयेत् ॥ ६१ ॥

लाड़ (प्यार) करने में बहुत दोष हैं तथा ताड़न करने में बहुत से गुण हैं। इसलिये पुत्र और शिष्य को हमेश शिक्षा देवे, कभी प्यार न करे ॥ ६१ ॥

श्लोकार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धार्धाक्षरेण वा ॥
अवंध्यं दिवसं कुर्याद्ध्यानाध्ययनकर्मभिः ॥ ६२ ॥

एक श्लोक अथवा आधा, उससे भी आधा या एक अक्षर का ही अभ्यास करके दिन को दानाध्ययनादि सत्कर्म से पूर्ति करे अर्थात् निष्फल न खोवे ॥ ६२ ॥

कान्तावियोगः स्वजनापमानो
ऋणस्य शेषः कुनृपस्य सेवा ।
दरिद्रभावो विषमा सभा च
विनाग्निमेते प्रदहन्ति कायम् ॥ ६३ ॥

शीलवती स्वनारी से वियोग, स्वजन से किया हुआ अपमान, कर्ज का शेष, दुष्ट राजा की सेवा, दरिद्रता, अविवेकी पुरुषों का समाज ये सब विना अग्नि के शरीर को जला देते हैं ॥ ६३ ॥

नदीतीरे च ये वृक्षाः परगेहेषु कामिनी ॥
मन्त्रिहीनाश्च राजानः शीघ्रं नश्यंत्यसंशयम् ॥ ६४ ॥

नदी किनारे का वृक्ष, दूसरे के घर में गई हुई औरत, मन्त्री हीन राजा ये सब शीघ्र ही नष्ट होते हैं । ॥ ६४ ॥

बलं विद्या च विप्राणां राज्ञां सैन्यबलं तथा ॥
बलं वित्तं च वैश्यानां शूद्राणां च कनिष्ठिका ॥ ६५ ॥

T

ब्राह्मणों को विद्या, राजाओं का सैन्य, और वैश्यों का धन तथा शूद्रों का सेवा ही बल है ॥ ६५ ॥

दुराचारी च दुर्दृष्टिः दुरावासी च दुर्जनः ॥
यैर्मैत्री क्रियते पुम्भिर्नरः शीघ्रं विनश्यति ॥ ६६ ॥

दुराचारी, पापदृष्टिवाला तथा कुस्थान में रहने वाला दुर्जन ऐसे पुरुष से जो मित्रता करता है वह शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६६ ॥

समाने शोभते प्रीती राज्ञि सेवा च शोभते ॥
वाणिज्यं व्यवहारेषु स्त्री दिव्या शोभते गृहे ॥ ६७॥

बराबर वाले से मित्रता, राजा की सेवा, व्यवहार में वाणिज्य और घर में दिव्य स्त्री शोभित होती है ॥ ६७ ॥

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः ॥
व्यसनं केन न प्राप्तं कस्य सौख्यं निरंतरम् ॥ ६८ ॥

किसका कुल सर्व दोष रहित है ? व्याधि ने किसको पीड़ित नहीं किया ? संकट किसे प्राप्त नहीं हुआ ? तथा हमेशा सुख किसको रहा है ? अर्थात् यह वस्तुएं सभी को यथा भाग्य ही मिलती हैं ॥ ६८ ॥

आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम् ॥
संभ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ॥ ६९ ॥

आचार कुलको कहता है, भाषा देश बतलाती है आदर

करना ही प्रेम का द्योतक है। शरीर की आकृति ही खाद्य श्रेष्ठ अश्रेष्ठ भोजन को बतलाती है ॥ ६९ ॥

सत्कुले योजयेत् कन्यां पुत्रं विद्यासु योजयेत् ॥
व्यसने योजयेच्छत्रुं मित्रं धर्मेण योजयेत् ॥ ७० ॥

कन्या अच्छे कुल में देनी चाहिये तथा पुत्र को विद्याभ्यास में लगाना चाहिये। शत्रु को संकट में और मित्र को धर्म में प्रवृत्त कराना चहिये ॥ ७० ॥

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः ॥
सर्पो दंशति कालेन दुर्जनस्तु पदे पदे ॥ ७१ ॥

दुर्जन और सर्प में सर्प ही श्रेष्ठ है, क्यों कि सर्प तो समय से काटता है परन्तु दुर्जन पद पद पर मर्म छेदन करता है ॥ ७१ ॥

एतदर्थं कुलीनानां नृपाः कुर्वन्ति संग्रहम् ॥
आदिमध्यावसानेषु न त्यजन्ति च ते नृपम् ॥७२॥

राजा कुलीन पुरुषों का संग्रह इस लिये करता है कि वह आदि मध्य अन्त (उत्कर्ष, अपकर्षोत्कर्ष, अपकर्ष) में राज को नहीं छोड़ते। अर्थात् प्रत्येक समय उसकी सहायता करते हैं ॥ ७२ ॥

मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः ॥
भिद्यते वाक्यशल्येन अदृशं कंटको यथा ॥ ७३ ॥

T

मूर्ख पुरुष का सर्वदा त्याग ही करना चाहिये क्योंकि वह प्रत्यक्ष दो पैर का पशु है. तथा सर्वदा अपने वाग्वाण से वेधता रहता है, जैसे अन्धे को कांटा वेधता है ॥ ७३ ॥

रूपयौवनसंपन्ना विशालकुलसंभवाः ॥
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥ ७४ ॥

सुन्दर रूप और यौवन से सम्पन्न तथा उच्च कुल में उत्पन्न भी विद्याविहीन पुरुष अच्छा नहीं लगता जैसे खूबसूरत पलास का फूल भी निर्गन्ध होने से अच्छा नहीं लगता ॥ ७४ ॥

कोकिलानां स्वरो रूपं स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम् ॥
विद्यारूपं कुरूपाणां क्षमारूपं तपस्विनाम् ॥ ७५ ॥

कोकिलों का स्वर, स्त्रियों का पतिव्रत, कुरूपों की विद्या और तपस्वियों की क्षमा ही स्वरूप है ॥ ७५ ॥

उद्‌योगे नास्ति दारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम् ॥
मौने च कलहो नास्ति नास्ति जागरितो भयम् ॥७६॥

उद्योग से दरिद्र नष्ट होता है जप से पातक, मौन रहने से कलह तथा जागने में भय नहीं होता ॥ ७६ ॥

अतिरूपेण वै सीता अतिगर्वेण रावणः ॥
अति दानाद्बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत् ॥ ७७ ॥

अति रूपवती होने से सीता, अति गर्व से रावण, अधिक

T

दान से वलि बंधा इसलिये किसी भी काम में ज्यादती नहीं करनी चाहिये ॥ ७७ ॥

को हि भारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम् ॥
को विदेशः सुविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ॥७८॥

समर्थ पुरुष को भार भार ही नहीं। उद्योगियों को कुछ दूर नहीं, विद्वानों को कहीं भी विदेश नहीं और मीठा बोलने वालों का कोई भी शत्रु नहीं होता है ॥ ७८ ॥

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगंधिना ॥
वासितं तद्वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ७९ ॥

एक ही सुवृक्ष के सुगन्धित पुष्प, फल से वन सुवासित हो जाता है, जैसे सुपुत्र से कुल प्रख्यात हो जाता है ॥ ७९ ॥

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना ॥
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ८० ॥

एक सूखे वृक्ष में अग्नि लगने से वह सम्पूर्ण वन जल जाता है, ठीक ऐसे ही एक कुपुत्र से कुल नष्ट हो जाता है ॥८०॥

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना ॥
आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चंद्रेण शर्वरी ॥८१॥

एक ही विद्वान्, सज्जन सुपुत्र से कुल आनन्दित हो जाता है जैसे एक ही चन्द्रमा से रात्रि शोभित होती है ॥८१॥

किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसंतापकारकैः ॥
वरमेकः कुलालंबी यत्र विश्राम्यते कुलम् ॥ ८२ ॥

शोक सन्ताप देने वाले बहुत से पुत्रों की अपेक्षा कुलालम्बी एक ही पुत्र श्रेष्ठ है जिससे कुल को विश्रान्ति मिलती है ॥ ८२ ॥

लालयेत् पंचवर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ॥
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रस्वमाचरेत् ॥ ८३ ॥

बालक को पांच वर्ष तक प्यार करे, दश वर्ष तक ताड़ना करे। मगर जब पुत्र सोलह वर्ष का हो तो उस से स्वमित्र की तरह आचरण करे ॥ ८३ ॥

उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे ॥
असाधुजनसंपर्के यः पलायेत् स जीवति ॥ ८४ ॥

रोगादि के उपद्रव से, शत्रु सैन्य से पराजित तथा भयंकर दुष्काल में और दुष्टों के संग से जो भागे वही जीवित रह सकता है, अन्यथा नहीं ॥ ८४ ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु यस्यैकोपि न विद्यते ॥
जन्म जन्मानि मर्त्येषु मरणं तस्य केवलम् ॥ ८५ ॥

जिसने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों में से एक भी उपार्जित नहीं किया। उसके कई जन्मों का फल मृत्यु ही है अर्थात् उसका जीवन वृथा है ॥ ८५ ॥

T

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते धान्यं यत्र सुसंचितम् ॥
दम्पत्योः कलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता ॥८६॥

जहाँ मूर्खों का मान नहीं होता, और जहां अन्न का संग्रह किया जाता है और जहाँ दाम्पत्य में प्रेम है वहाँ लक्ष्मी स्वयं निवास करती हैं ॥ ८६ ॥

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेवच ॥
पंचैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥८७॥

आयु, कर्म, धन, विद्या नाश यह पांच वस्तुएं जीव को गर्भ में ही प्राप्त हो जाती हैं, अर्थात् गर्भ में ही लिख दी जाती हैं ॥ ८७ ॥

दर्शनध्यानसंस्पर्शै मत्सी कूर्मी च पक्षिणी ॥
शिशुं पालयते नित्यं तथा सज्जनसंगतिः ॥ ८८ ॥

जिस तरह मछली देखकर, कच्छपी ध्यान से और चिड़िया स्पर्श से अन्डे सेती हैं। बच्चों का पालन करती हैं) उसी प्रकार दर्शन, स्पर्शन, और ध्यान से सज्जनों की संगति रक्षा करती है ॥ ८८ ॥

कामधेनुगुणा विद्या ह्यकाले फलदायिनी ॥
प्रवासे मातृसदृशी विद्या गुप्तधनं स्मृतम् ॥ ८९ ॥

विद्या कामधेनु की तरह इच्छित फल देती है। वह अकाल

में भी फल देती है। प्रवास में माता के सदृश रक्षा करती है। इस लिये विद्या को गुप्त धन कहा गया है ॥ ८६ ॥

एकोऽपि गुणवान् पुत्रो निर्गुणैश्च शतैर्वरः ॥
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारासहस्रशः ॥ ६० ॥

हजारों तारे भी अन्धकार को नष्ट नहीं कर सकते परन्तु एक ही चन्द्र अंधकार को नष्ट कर सकता है। उसी प्रकार हजारों निर्गुणी पुत्रों की अपेक्षा एक गुणी पुत्र श्रेष्ठ है ॥ ६० ॥

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्माज्जातो मृतो वरः ॥
मृतः स चाल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत् ॥ ६१ ॥

यदि मूर्ख जन्म कर लम्बी आयु भोगने की अपेक्षा जल्द मर जाय तो अच्छा है। क्योंकि जन्मते ही मर जाने से वह थोड़ा दुःख देता और ज्यादा जीने से अधिक दुःख देता है ॥ ६१ ॥

कुग्रामवासः कुलहीनसेवा
कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या।
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या
विनाग्निना षट् प्रदहन्ति कायम् ॥ ६२ ॥

बुरे ग्राम में वास, कुलहीन की सेवा, खराब भोजन, क्रोधी स्त्री, मूर्ख पुत्र और विधवा कन्या यह सब बिना अग्नि के काया को जलाते हैं ॥ ६२ ॥

T

किं तया क्रियते धेन्वा या न दोग्ध्री न गुर्विणी ॥
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न भक्तिमान् ॥६३॥

उस गऊ से क्या लाभ है जो न तो दूध देती है और न बच्चा देती है। इसी प्रकार उस पुत्र से क्या लाभ जो न तो भक्त ही है और न विद्वान् ही है ॥ ६३ ॥

संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रांतिहेतवः ॥
अपत्यं च कलत्रं च सतां संगतिरेव च ॥ ६४ ॥

संसार रूपी ताप से जले हुए पुरुषों को तीन वस्तुओं से ही शान्ति मिलती है। एक पुत्र दूसरी स्त्री तीसरी सत्पुरुषों की संगति ॥ ६४ ॥

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पंडिताः ॥
सकृत्कन्या प्रदीयेत त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ॥६५॥

राजा एक वार ही आज्ञा देते हैं, पंडित एक वार ही बोलते हैं और कन्या का दान भी एक ही वार होता है अर्थात् यह तीनों बात बार २ नहीं होती ॥ ६५ ॥

एकाकिना तपो द्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभिः ॥
चतुर्भिर्गमनं क्षेत्रं पंचभिर्बहुभी रणम् ॥ ६६ ॥

अकेले में भजन, दो में पठन, तीन में गायन चार में यात्रा, पांच से खेती और असंख्य पुरुष रण में योग्य समझे जाते हैं ॥ ६६ ॥

T

सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा भार्या या पतिव्रता ॥
सा भार्या या पतिप्रीता सा भार्या सत्यवादिनी ॥९७॥

वही स्त्री सुस्त्री है जो पवित्र और चतुर है, स्त्री वही है जो पतिव्रता है, वही स्त्री स्त्री है जो पति-प्रिया है। स्त्री उसे ही समझो जो सत्य बोलनेवाली है ॥ ९७ ॥

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्यास्त्वबांधवाः ॥
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्या दरिद्रता ॥ ९८ ॥

पुत्र विना घर शून्य, बान्धव विना दिशाएं शून्य, मूर्ख का हृदय और दरिद्रता सर्व शून्य है। अर्थात् यह सब शोभित नहीं होते ॥ ९८ ॥

अनभ्यासे विषं शास्त्रमजीर्णे भोजनं विषम् ॥
दरिद्रस्य विषं गोष्ठी वृद्धस्य तरुणी विषम् ॥ ९९ ॥

अभ्यास विना शास्त्र, अजीर्ण में भोजन, दरिद्र को सभा और बूढ़े के लिये स्त्री विषरूप हैं ॥ ९९ ॥

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत् ॥
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यां निःस्नेहान् बांधवांस्त्यजेत् १०

दया हीन, धर्म विद्या हीन गुरु, क्रोध मुखी भार्या और प्रेमहीन वन्धुओं को त्याग देना चाहिये ॥ १०० ॥

अध्वा जरा मनुष्याणां अनध्वा वाजिनां जरा ॥
अमैथुनं जरा स्त्रीणां वस्त्राणामातपो जरा ॥ १०१ ॥

T

मनुष्यों को मार्ग, घोड़ों को न चलना स्त्रियों को अमैथुन वस्त्रों को आतप (धूप) बूढ़ा करता है ॥ १ १ ॥

कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययागमौ ॥
कस्याहं का च मे शक्तिरिति चिंत्यं मुहुर्मुहुः ॥१०२॥

क्या समय है ? कौन मित्र हैं ? कौन देश है ? क्या आमद और खर्च है ? मैं किसका हूं और मेरी शक्ति क्या है इसका बार बार विचार करना चाहिये ॥ १०२ ॥

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागत गुरुः ॥
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥ १०३॥

स्त्रियों का पति ही गुरु है, सब प्राणियों का अतिथि गुरु है। द्विजातियों का गुरु अग्नि और सब वर्णों का गुरु ब्राह्मण है ॥ १०३ ॥

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥ १० ४॥

जिस प्रकार घिसने, काटने तपाने और पीटने से सुवर्ण की परीक्षा होती है । उसी प्रकार त्याग, शील, गुण और कर्म से मनुष्य की परीक्षा होती है ॥ १०४ ॥

निःस्पृहो नाधिकारी स्यान्नाकामी मण्डनप्रियः ।
नाविदग्धः प्रियंब्रूयात् स्वष्टवक्ता न पञ्चकः ॥१०५॥

जिसको किसी बात की इच्छा न हो, न अधिकार चाहता हो, जो कामी न हो, चतुरता (वाक् पटुता) से रहित हो, स्पष्ट वक्ता हो, तो वह कभी भी ठग नहीं हो सकता । अर्थात् दूसरे को धोखा नहीं दे सकता । ॥ १०५ ॥

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या अधनानां महाधनाः ।
वराङ्गनाः कुलस्त्रीणां सुभगानां च दुर्भगाः ॥ १०६ ॥

मूर्खों का पण्डितों के साथ, गरीबों का धनिकों के साथ, कुल वधू से वेश्या का और विधवा का सधवा से द्वेष होता है । यानी यह सब आपस में द्वेष करते हैं । ॥ १०६ ॥

आलस्योपहृता विद्या परहस्तगतंधनम् ।
अल्पबीजं हतं क्षेत्रं हतं सैन्यमनायकम् ॥ १०७ ॥

आलस्य से विद्या, दूसरे के हाथ में गया हुआ धन, स्वल्प बीज वाला खेत और विना नायक की सेना नष्ट होती है ॥१०७॥

अभ्यासाद्धार्यते विद्या कुलं शीलेन धार्यते ।
गुणेन ज्ञायते त्वार्यः कोपो नेत्रेण गम्यते ॥ १०८ ॥

अभ्यास से विद्या, शील से कुल, गुण से श्रेष्ठता तथा नेत्र से क्रोध मालूम होता है ॥ १०८ ॥

T

वित्तेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृदुना रक्ष्यते भूपः सत्स्त्रिया रक्ष्यते गृहम् ॥१०६॥

धर्म से धन का, योग से ज्ञान का, और कोमलता से राजा का, अच्छी स्त्रियों से कुल की रक्षा होती है ॥ १०६ ॥

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम् ।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी ॥११०॥

दान से दरिद्रता का, शील से दुर्गुणों का, प्रज्ञा से अज्ञान का और भक्ति से भय का नाश होता है ॥ ११० ॥

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः ।
नास्ति कोपसमो वन्हिर्नास्तिज्ञानात्परंसुखम् ॥१११॥

काम से बड़ी व्याधि नहीं है, मोह के तुल्य शत्रु नहीं, क्रोध से बड़ी अग्नि नहीं है और ज्ञान से अधिक कोई सुख नहीं ॥ १११ ॥

तृणं ब्रह्मविदः स्वर्गस्तृणं शूरस्य जीवितम् ।
जिताक्षस्य तृणंनारी निःस्पृहस्य तृणं जगत् ॥११२॥

ब्रह्मवेत्ता पुरुष को स्वर्ग, शूर वीरों को अपना जीवन, जितेन्द्रिय को नारी तथा त्यागी पुरुष को सम्पूर्ण जगत् तृण के तुल्य है ॥ ११२ ॥

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मोमित्रं मृतस्य च ॥११३॥

T

प्रवास में विद्या, घर में स्त्री, रोगी को औषध और मरणानन्तर धर्म ही मित्र है ॥ ११३ ॥

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम्।
वृथा दान धनाढ्येषु वृथा दीपो दिवापिच ॥११४॥

समुद्र में वृष्टि, तृप्त को भोजन, धनी को दान, तथा दिन में दीपक जलाना वृथा है ॥११४॥

नास्ति मेघसमं तोयं नास्ति चात्मसमं बलम् ।
नास्ति चक्षुः समं तेजो नास्ति धान्यसमं प्रियम् ॥११५॥

मेघ समान शुद्ध जल, आत्म, बल के तुल्य बल नेत्र ज्योति के तुल्य तेज अन्न के तुल्य कोई प्रिय नहीं ॥ ११५ ॥

अधना धनमिच्छन्ति वाचं चैव चतुष्पदाः ।
मानवाः स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवताः ॥११६

निर्धन धन की, पशु प्रेम भरी वाणी की, मनुष्य स्वर्ग की और देवता मोक्ष की अभिलाषा रखते हैं ॥ ११६ ॥

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥११७॥

सत्य से ही पृथ्वी स्थिर है, सत्य से ही सूर्य तपता है सत्य के बल पर ही वायु चलती है । अर्थात् सब सत्य पर ही चलते (स्थिर) हैं ॥ ११७ ॥

T

चला लक्ष्मीश्चला: प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे।
चला चले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः॥११८॥

लक्ष्मी भी चञ्चल है। शरीर भी नाशवान् हैं, गृह भी नाशवान् है। इस नाशवान् संसार में सिर्फ धर्म ही निश्चल है, अर्थात् स्थिर है॥ ११८॥

नराणां नापितो धूर्त्तः पक्षिणां चैव वायसः।
चतुष्पदां शृगालस्तु स्त्रीणां धूर्त्ता च मालिनी॥११६॥

मनुष्यो में नाई, पक्षियों में कौआ, चौपायों में शृगाल और स्त्रियों में मालिन धूर्त होती है॥ ११६॥

जनिता चोपनेताच यस्तु विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पंचैते पितरः स्मृताः॥१२०॥

पैदा करने वाले, यज्ञोपवीतादि संस्कार करने वाले विद्या पढ़ाने वाले, अन्न देने वाले और भय से रक्षा करने वाले यह पांच पिता कहलाते हैं॥ १२०॥

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैव च।
पत्नीमाता स्वमाता च पंचैता मातरः स्मृताः॥१२१॥

राजपत्नी, गुरुपत्नी, मित्र की पत्नी, स्व स्त्री की माता और जननी यह पांचो माता कहलाती हैं॥१२१॥

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥१२२॥

T

सुनने से ही धर्म का ज्ञान होता है, तथा सुनने से ही कुबुद्धि का त्याग, ज्ञान प्राप्ति और सुनने से ही मोक्ष मिलता है ॥ १२२ ॥

पक्षिणां काकचाण्डालः पशूनां चैव कुक्कुरः ।
मुनीनां पापचाण्डालः सर्वचाण्डाल निन्दकः ॥१२३॥

पक्षियों में काक, पशुओं में कुत्ता, मुनियों में पापाचरण करने वाला तथा सबसे चण्डाल दूसरे की बुराई करने वाला निन्दक होता है ॥ १२३ ॥

भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमाम्लेन शुध्यते ।
रजसा शुध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यते ॥१२४॥

राख से कांसा, खटाई से, तांबा, मासिक धर्म से स्त्री और प्रवाह से नदी शुद्ध होती है ॥ १२४ ॥

भ्रमन् संपूज्यते राजा भ्रमन् संपूज्यते द्विजः
भ्रमन् संपूज्यते योगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति ॥१२५

घूमने से राजा, ब्राह्मण और योगी की पूजा होती है परन्तु घूमने वाली स्त्री का नाश होता है ॥ १२५ ॥

यस्यार्थस्तस्य मित्राणि यस्यार्थस्तस्य बान्धवाः
यस्यार्थ सधुमान् लोके यस्यार्थः सच पंडितः ॥ १२६

जिसके पास संसार में धन है, उसी पुरुष के मित्र बंधु हैं, और वही पुरुषार्थी है और वही पण्डित है ॥१२६

T

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥१२७॥

जैसी भावी होती है, वैसी ही बुद्धि हो जाती है। व्यवसाय और सहायता भी वैसी ही मिलती है॥ १२७॥

न च पश्यति जन्मांधः कामांधो नैव पश्यति।
मदोन्मत्ता न पश्यंति अर्थी दोषं न पश्यति ॥१२८॥

जन्मान्ध, कामान्ध और मदान्धों को तथा अर्थी (स्वेष्ट साधन शील) को दोष नहीं दीखता॥ १२८॥

राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः।
भर्त्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्यपापं गुरुस्तथा ॥१२९॥

राष्ट्र के पाप का भागी राजा, राजा के पाप का भागी पुरोहित, स्त्री के पाप का भागी पति तथा शिष्य के पाप का भागी गुरु होता है॥ १२९॥

ऋणकर्त्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपंडितः॥ १३०॥

करज करने वाला पिता, व्यभिचारिणी माता, रूपवती स्त्री और मूर्ख पुत्र शत्रु के समान होता है॥१३०॥

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् स्तब्धमञ्जलिकर्मणा।
मूर्खं छंदानुवृत्त्या च यथार्थत्वेन पंडितम् ॥१३१॥

T

लोभी धन से, मानी सत्कार से, मूर्ख उसकी इच्छानुसार आचरण से और पंडित सदाचरण से वश में होते हैं ॥१३१॥

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं
वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम् ।
वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्यो
वरं न दाराः न कुदारदाराः ॥ १३२ ॥

राज्य न हो तो अच्छा. परन्तु दुष्ट राजा का राज्य अच्छा नहीं, मित्र न हो तो अच्छा, परन्तु दुष्ट मित्र अच्छा नहीं शिष्य न हो तो अच्छा, परन्तु कुशिष्य अच्छा नहीं. चिन स्त्री के अच्छा, परन्तु दुष्ट स्त्री अच्छी नहीं होती ॥ १३२ ॥

कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखं,
कुमित्रमित्रेण कुतोऽस्ति निर्वृतिः ।
कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिः
कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः ॥१३३॥

दुर्गुणी राजा के राज्य में प्रजा को सुख कहां ? दुष्ट मि की मित्रता में सुख कहां ? इसी प्रकार दुष्टा स्त्री के रहने घर में प्रेम कहां, तथा कुशिष्य के पढ़ाने में यश न मिलता ॥ १३३ ॥

इन्द्रियाणि च संयम्य बकवत् पंडितो नरः
देशकालबलं ज्ञात्वा सर्वकर्माणि साधयेत् ॥१३४

विद्वान् पुरुष को बगुले की तरह सब इन्द्रियों का निग्रह करके देश काल और शक्ति के अनुकूल सर्व कार्य सिद्धि करनी चाहिये ॥ १३४ ॥

अर्थनाशं मनस्तापं गृहिणी चरितानि च।
नीचवाक्यं चापमानं मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥१३५॥

बुद्धिमान को धन का क्षय, मन का संताप, स्वस्त्री का चरित्र, दुर्जन के वाक्य, दूसरे से हुआ अपमान प्रकाशित नहीं करना चाहिये ॥१३५ ॥

संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शांतिचेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥१३६॥

सन्तोष रूपी अमृत से तृप्त हुए को शान्ति मिलती है। यह शान्ति (सुख) लोभ से इधर उधर दौड़ने वाले को नहीं मिलती ॥ १३६ ॥

संतोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः ॥१३७॥

अपने भाग्यानुसार प्राप्त धन, स्त्री और भोजन में सर्वदा सन्तुष्ट रहे। अध्ययन, जप और, दान इन तीन वस्तुओं में कभी संतोष न करे ॥ १३७ ॥

विप्रयोर्विप्रवन्ह्योश्च दंपत्योः स्वामिभृत्ययोः।
अंतरेण न गंतव्यं हरस्य वृषभस्य च ॥१३८॥

T

दो ब्राह्मणों के बीच से, अग्नि और ब्राह्मण के बीच से पति पत्नी, मालिक, नौकर नन्दी और शंकर के बीच से कभी न जाय ॥१३८॥

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेव च।
नैव गां न कुमारीं च न वृद्धं न शिशुं तथा ॥१३९॥

अग्नि, गुरु ब्राह्मण, गौ, कुमारी, वृद्ध और शिशु इनको पैर से स्पर्श न करे, (इससे पाप होता है ॥ १३९ ॥

शकटात् पंचहस्तेन दशहस्तेन वाजिनः ।
गजं हस्तेसहस्रेण देशत्यागेन दुर्जनात् ॥१४०॥

गाड़ी से पांच हाथ, घोड़े से दस हाथ, और हाथी से हजार हाथ दूर रहे, तथा जिस देश में दुर्जन रहता है. वह देश (प्रान्त) त्याग देना चाहिये ।१४० ॥

गजोह्यंकुशमात्रेण वाजी हस्तेन ताड्यते ।
शृङ्गी लगुडहस्तेन खड्गहस्तेन दुर्जनः ॥१४१॥

हाथी अंकुश से, हाथ से घोड़ा, सींग वाले जानवर को लाठी से और दुर्जन को खड्ग से वश में करे ॥ १४१ ॥

तुष्यन्ति भोजने विप्रा मयूरा घनगर्जिते ।
साधवः परसंपत्तौ खलाः परविपत्तिषु ॥१४२॥

ब्राह्मण लोग भोजन से, मोर बादल के गर्जन से, सज्जन लोग दूसरों को धन मिलने से, और दुष्ट लोग दूसरों पर विपत्ति आने से खुश होते हैं ॥१४२॥

T

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्जनम् ।
आत्मतुल्यबलं शत्रुं विनयेन बलेन वा ॥१४३॥

अपने से बलवान शत्रु को उसी के आचरण से, दुष्ट शत्रु को विपरीत आचरण से और अपने समान बल वाले शत्रु को ताकत या नम्रता से वश में करे ॥१४३॥

बाह्वोवीर्यं बलं राज्ञो ब्राह्मणो ब्रह्मविद्बली ।
रूपयौवनमाधुर्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम् ॥१४४॥

राजा का बल पराक्रम है, ब्रह्म याने वेद का ज्ञान ही ब्राह्मण का बल है, और स्त्रियों का रूप एवं जवानी की मधुरता ही बल है ॥ १४४ ॥

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम् ।
छिद्यंते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठंति पादपाः ॥१४५॥

अत्यन्त सरलता से रहना भी दुःख का कारण होता है, जंगल में जाकर देखो, सरल अर्थात् सीधे पेड़ जल्दी काटे जाते हैं, कुवड़े पेड़ों को कोई देखता भी नहीं ॥ १४५ ॥

यत्रोदकं तत्र वसंति हंसास्तथैव शुष्कं परिवर्जयंति।
न हंसतुल्येन नरेण भाव्यं पुनस्त्यजंते पुनराश्रयंते॥१४६

जहां पर पानी रहता है, वहीं हंस रहते हैं। और सूख जाने पर उस जगह को छोड़ देते है। मनुष्य को हंस की तरह

T

रहना नहीं चाहिये कि, एक जगह को छोड़ कर पुनः उसका आश्रय करें ॥ १४६ ॥

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके,
चत्वारि चिह्नानि वसंति देहे ।
दानप्रसंगो मधुरा च वाणी,
देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च ॥१४७॥

स्वर्ग में रहने वाले मनुष्यों के चार चिह्न होते हैं, जैसे—(१) दान देना, (२) मीठी बोली, (३) देवताओं की पूजा (४) और ब्राह्मणों को तृप्त करना ॥ १४७ ॥

अत्यंतकोपः कटुका च वाणी,
दरिद्रता बंधुजनेषु वैरम् ।
नीचप्रसङ्गः कुलहीनसेवा,
चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम् ॥१४८॥

नरक में रहने वालों जीवों के ये चिह्न होते है। जैसे—(१) बहुत क्रोध, (२) कड़ी बोली (३) दरिद्रता, (४) अपने रिश्तेदारों से दुश्मनी, (५) नीचों का सहवास और (६) कुलहीनों की सेवा ॥ १४८ ॥

गम्यते यदि मृगेन्द्रमंदिरं
लभ्यते करिकपोलमौक्तिकम् ।

T

जम्बुकालयगते च लभ्यते,
वत्सपुच्छखरचर्मखंडनम् ॥१४६॥

यदि सिंह के मांद में जाय तो उसे हाथी के कपोल की मोती मिलती है, और सियार के स्थान में जाने से बछवे की पूंछ एवं गदह के चमड़े का टुकड़ा पाया जाता है ॥ १४६ ॥

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना।
न गुह्यगोपने सक्तं न च दंशनिवारणे ॥१५०॥

विद्या के विना जीना कुत्ते के पोंछ के जैसे बेकार है। क्योंकि कुत्ते की पोंछ न गुप्त वात छिपा सकती है और न मच्छरादि को उड़ाही सकती है ॥ १५० ॥

पुष्पे गंधं तिले तैलं काष्ठे वह्निः पयो घृतम्।
इक्षौ गुडं तथा देहे पश्यात्मानं विवेकतः ॥१५१॥

जैसे पुष्प में सुगन्ध, तिल में तेल, लकड़ी में आग, दूध में घी और ईख में गुड़ छिपा रहता है। वैसे ही शरीर में आत्मा रहता है, इसे विवेक पूर्वक देखो ॥ १५१ ॥

अधमा धनमिच्छंति धनं मानं च मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छंति मानो हि महतां धनम् ॥१५२॥

अधम पुरुष धन की इच्छा करते हैं, मध्यम वर्ग के लोग धन एवं मान चाहते हैं और उच्चकोटि के मनुष्य केवल

:मान अर्थात् सम्मान ही की कामना करते हैं, क्यों कि मान ही महात्माओं का धन है ॥ १५२ ॥

दूत्तुरापः पयो मूलं तांबूलं फलमौषधम् ।
भत्तयित्वापि कर्त्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥५३॥

ईख, पानी, दूध, मूल, पान, फल और खाने पर स्नान-दानादि कर्म कर सकते हैं ॥ १५३ ॥

दीपो भत्त्यते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते ।
यदन्नं भत्त्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजाः ॥१५४॥

जैसे दीपक अन्धकार को खाकर काजल पैदा करता है, सत्य है, जैसा अन्न रोज खाया जाता है वैसी ही सन्तान होती है ॥ १५४ ॥

तैलाभ्यंगे चिताधूम्रे मैथुने त्तौरकर्मणि ।
तावद् भवति चांडाली यावत्स्नानं समा चरेत् ॥१५५

तेल लगाने के बाद, चिता का धूंआ शरीर पर लगने के बाद, मैथुन याने स्त्रीसंग के बाद और बाल बनवाने के बाद तब तक मनुष्य चाण्डाल रहता है जब तक फिर स्नान न कर लेता है ॥ १५५ ॥

अजीर्णे भैषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम् ।
भोजने चामृतं वारि भोजनांते विषप्रदम् ॥१५६

अपच में पानी पीना ही हितकर होता है, पचने प

जल ताक़त देता है और भोजन के बीच में जल पान अमृत के बराबर होता है। एवं भोजन के बाद जल पीना विषतुल्य होता है ॥ १५६ ॥

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाज्ञानतो नरः।
हतं निर्नायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः ॥१५७॥

सदाचार विना ज्ञान व्यर्थ होता है, अज्ञान से मनुष्य मारा जाता है सेनापति के विना सेना नष्ट होती है और पति के विना स्त्री नष्ट हो जाती है ॥ १५७ ॥

वृद्धकाले मृता भार्या बन्धुहस्तगतं धनम्।
भोजनं च पराधीनं तिस्रः पुंसां विडम्बनाः ॥१५८॥

बुढ़ापे में स्त्री का मर जाना, भाईयों के हाथ गया हुआ धन एवं पराधीन भोजन ये तीन पुरुषों की विडम्बना है अर्थात् दुःखदायक होते हैं ॥ १५८ ॥

अग्निहोत्रं विना वेदा न च दानं विना क्रियाः।
न भावेन विना सिद्धिस्तस्मात्भावो हि कारणम् ॥१५९

अग्निहोत्र के विना वेद और दान के विना कर्म वृथा है। एवं भाव के अर्थात् श्रद्धा के विना सिद्धि नहीं होती है। इस लिये प्रेम ही सब का मूल कारण है ॥ १५९ ॥

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्मात्भावो हि कारणम् ॥१६०॥

T

देवता न लकड़ी में, न पत्थर में और न मट्टी में रहते हैं, केवल जहां श्रद्धा होती है वहीं सब कुछ है। इसलिये श्रद्धा नहीं मूल कारण है ॥ १६० ॥

शांतितुल्यं तपो नास्ति न संतोषात्परं सुखम्।
न तृष्णायाः परो व्याधिर्न च धर्मो दयापरः ॥१६१॥

शान्ति के समान दूसरा तप नहीं है, सन्तोष से परे न सुख नहीं है, न तृष्णा से दूसरी व्याधि और दया से न अधिक धर्म है ॥१६१॥

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या कामदुघा धेनुः संतोषो नंदनं वनम् ॥१६२॥

गुस्सा यमराज के सदृश होता है, तृष्णा याने चाह वैतरणी नदी के समान है, विद्या काम धेनु गाय के तुल्य है और सन्तोष मानों इन्द्र की वाटिका ही है ॥ १६२ ॥

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम्।
सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषयते धनम् ॥१६३॥

गुण रूप को भूषण है, कुल का भूषण शील है. सिद्धि विद्या को भूषित करती है और भोग धन को भूषित करता है ॥ १६३ ॥

निर्गुणस्य हतं रूपं दुःशीलस्य हतं कुलम्।
असिद्धस्य हता विद्या अभोगेन हतं धनम् ॥१६४॥

गुण के विना रूप व्यर्थ है, दुश्चरित्र का कुल नष्ट हो जाता है, सिद्धि विना विद्या ही व्यर्थ है, और जिसधन से सुख नहीं मिलता वह धन ही वृथा है ॥ १६४ ॥

शुद्धं भूमिगतं तोयं शुद्धा नारी पतिव्रता ।
शुचिः क्षेमकरो राजा सन्तोषी ब्राह्मणः शुचिः॥१६५॥

भूमिगत जल पवित्र होता है, पतिव्रता स्त्री पवित्र होती है, कल्याण करने वाला राजा पवित्र गिना जाता है, और संतोषी ब्राह्मण शुद्ध होता है ॥१६५॥

असंतुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टश्च महीपतिः ।
सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जा च कुलांगना ॥१६६

असंतोषी ब्राह्मण तथा संतोषी राजा, निन्दित गिने जाते हैं सलज्जा वेश्या और लज्जाहीन कुलस्त्री निन्दित गिनी जाती हैं ॥ १६६ ॥

किं कुलेन विशालेन विद्याहीने च देहिनाम् ।
दुष्कुलं चापि विदुषो देवैरपि हि पूज्यते ॥१६७॥

विद्याहीन बड़े कुलसे मनुष्यों को क्या लाभ है ? विद्वान् का नीचा कुल देवता से भी पूजा जाता है ॥ १६७ ॥

रूपयौवनसंपन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः॥१६८॥

T

सुन्दर तरुणयुक्त और बड़े कुल में उत्पन्न विद्याहीन नहीं शोभते जैसे विना गन्ध के पलास फूल ॥ १६८ ॥

मांसभक्ष्यैः सुरापानैः मूर्खैश्चाक्षरवर्जितैः ।
पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराक्रांतास्तिमेदिनी ॥ १६९ ॥

सर्वदा मांस खानेवाले, शराब पीने वाले अक्षर शून्य पुरुषा कार पशुतुल्य मूर्खों से यह भूमण्डल भाराक्रान्त है ॥ १६९ ॥

अन्नहीनो दहेद्राष्टं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः ।
यजमानं दानहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥१७०॥

अन्नदान विना किया हुआ यज्ञ समूचे देश को जला देता है, मन्त्रहीन यज्ञ ऋत्विजों को भस्म करता है और दानहीन यज्ञ यजमान को को नष्ट कर देता है इसलिये यज्ञ के समान कोई दुश्मन नहीं है ॥ १७० ॥

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्यजते ।
क्षमार्जवदयातोष सत्यंपीयूषवत्पिव ॥ १७१ ॥

हे भाई. यदि तुम मुक्ति याने मोक्ष चाहते हो तो विषयों को जहर के समान समझकर त्याग दो, क्षमा, आर्जव, दया, संतोष और सत्य को अमृत के समान सेवन करो ॥१७१॥

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदंडे ।
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य ।

T

विद्वान धनाढ्यो नृपदीर्घजीवी,
धातुः पुराकोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ॥ १७२ ॥

सोने में महक, ईख, चन्दन में फूल, धनवान् विद्वान एवं खूब आयुष्य वाला राजा होना चाहिये, मालूम होता है कि, सृष्टि के समय ब्रह्माजी को बुद्धि देनेवाला कोई न था ॥ १७२ ॥

सर्वौषधीनाममृता प्रधाना,
सर्वेषुसौख्येष्वशनं प्रधानम् ।
सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानम्,
सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥ १७३ ॥

सब औषधियों में हर्रे प्रधान होता है. सब सुखों में अशन याने खाना प्रधान, सब इन्द्रियों में आंख प्रधान एवं सब अङ्गों में सिर प्रधान होता है ॥ १७३ ॥

दूतो न संचरति खे न चलेच्चावार्त्ता,
पूर्वं न जल्पितमिदं न च संगमोऽस्ति ।
व्योम्नि स्थितं रविशशिग्रहणं प्रशस्तं,
जानाति यो द्विजवरः स कथं न विद्वान् ॥१७४ ॥

आकाश में दूत नहीं चल सकता है और न कोई बात वहां पहुंच सकती है, एवं पहिले ही बात करदी गई है ऐसा

कहना भी ठीक नहीं है, आकाश में होने वाला सूर्यग्रहण ठीक है, यह जो ब्राह्मण जानता है वह विद्वान क्यों नहीं है ॥ १७४ ॥

विद्यार्थी सेवकः पांथ क्षुधार्तो भयकातरः ।
भांडारी प्रतिहारी च सप्त सुप्तान् प्रबोधयेत् ॥१७५॥

विद्यार्थी, सेवक, पथिक, अधिक भूख से पीड़ित, भय से कातर, भंडारी, द्वारपाल ये सात यदि सोते हों तो जगा देना चाहिये ॥ १७५ ॥

अहिं नृपं च शार्दूलं वृटिं च बालकं तथा ।
परश्वानं च मूर्खं च सप्त सुप्तान्न बोधयेत् ॥१७६॥

सांप, राजा, व्याघ्र, बर्रै, बालक दूसरे का कुत्ता और मूर्ख ये सात सोते हों तो नहीं जगाना चाहिये ॥ १७६ ॥

अर्थाधीताश्च यैर्वेदास्तथा शूद्रान्नभोजिनः ।
तेद्विजाः किं करिष्यंति निर्विषाइव पन्नगाः ॥ १७७ ॥

जिन्होंने धन के लिये अर्थ के साथ वेद को पढ़ा, तैसे ही शूद्र का अन्न भोजन किया, वे ब्राह्मण विषहीन सर्प के समान क्या कर सकते हैं ॥ १७७ ॥

यस्मिन् रुष्टेभयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः ।
निग्रहोऽनुग्रहेनास्ति स रुष्टः किंकरिष्यति ॥ १७८ ॥

जिसके रुष्ट होने पर न भय है, न प्रसन्न होने पर धन

का लाभ है, न दण्ड वा अनुग्रह होसक्ता है; वह रुष्ट होकर क्या करेगा ॥१७८॥

निर्विषेणापि सर्पेण कर्तव्यामहतीफणा ।
विषमस्तु न चाप्यस्तु फटाटोपो भयंकरः ॥१७९॥

विषहीन सांप कोभी अपना फण बढ़ाना चाहिये, क्योंकि विष हो वा न हो आडम्बर भयानक होता है ॥ १७९ ॥

प्रातर्द्यू त प्रसंगेन मध्याह्ने स्त्री प्रसंगतः ।
रात्रौचौर प्रसंगेन कालोगच्छतिधीमताम् ॥१८०॥

प्रातः काल जुआड़ियों की कथा से अर्थात् महाभारत से, मध्यह्नमें स्त्री प्रसंगसे. अर्थात् रामायण से, रात्रि में चोरों की बातोंसे, अर्थात् बुद्धिमान् का समय बीतता है ॥१८०॥

स्वहस्त ग्रथितामाला स्वहस्त घृष्ट चन्दनम् ।
स्वहस्त लिखितं स्तोत्रं शक्र स्यापि श्रियं हरेत ॥१८१॥

अपने हाथ से गुंथी माला, अपने हाथ से घिसा चन्दन अपने हाथ से लिखा स्तोत्र ये इन्द्र की भी लक्ष्मी को हर लेते हैं ॥ १८१ ॥

इक्षुदण्डास्तिलाः शूद्राः कान्ता हेम मेदिनी ।
चन्दनं दधि ताम्बूलं मर्दनं गुण बर्द्धनम् ॥१८२॥

ऊख, तिल, शूद्र, कान्ता, सोना, पृथ्वी, चन्दन, दही पान ये ऐसे पदार्थ हैं कि इनका मर्दन गुणवर्धक है ॥१८२॥

T

दरिद्रता धीरतया विराजते
कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते ।
कदन्नता चोष्णतया विराजते
कुरूपता शीलतया विराजते ॥१८३॥

दरिद्रता भी धीरता से शोभती है, स्वच्छता से कुव
भी सुन्दर जान पड़ता है, कुअन्न भी उष्णता से मीठा लग
है, कुरूपता भी सुशीलता हो तो शोभती है ॥१८३॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिवेज्जलम् ।
शास्त्रपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत् ॥१८४॥

दृष्टि से शोधकर पाँव रखना उचित है, वस्त्र से छान
जल पीना, शास्त्र से शुद्ध कर वाक्य बोले, मन से सोच
कार्य करना चाहिये ॥१८४॥

सुखार्थीचेत्त्यजेद्विद्यां विद्यार्थीचेत्सुखम् ।
सुखार्थिनः कुतोविद्या सुखंविद्यार्थिनः कुतः ॥१८

यदि सुख चाहे तो विद्या को छोड़ दे, यदि विद्या
सुख को त्याग करे, सुखार्थी को विद्या कैसे होगी
विद्यार्थी को सुख कैसे होगा ॥१८५॥

रंकं करोति राजानं रंक मेवच ।
धनिनं निर्द्धनं चैव निर्द्धनं धनिनं विधिः ॥१८६॥

T

निश्चय है कि विधाता रंक को राजा, राजा को रंक, धनी को निर्धनी और निर्धनी को धनी कर देता है ॥१८६॥

लुब्धानां याचकः शत्रु मूर्खाणां बोधको रिपुः।
जारस्त्रीणां पतिः शत्रु श्चौराणां चन्द्रमा रिपुः ॥१८७॥

लोभियों को याचक, मूर्खों को समझाने वाला, व्यभिचारिणी स्त्री को पति और चोरों का चन्द्रमा शत्रु है ॥१८७॥

येषा न विद्या न तपो न दानं।
न चापि शीलं न गुणों न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुविभार भूता–
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ १८८ ॥

जिन लोगों को न विद्या है, न तप है, न दान है, न शील है न गुण है और न धर्म है वे संसार में पृथ्वी पर भार रूप होकर मनुष्य रूप से मृग के समान फिर रहे हैं ॥ १८८ ॥

अन्तःसार विहीनानामुपदेशो न जायते।
मलयाचलसंसर्गात् न वेणुश्चन्दनायते ॥१८९॥

गम्भीरता विहीन पुरुषों को शिक्षा देना सार्थक नहीं होता, मलयाचल के संग से बांस चन्दन नहीं होता ॥१८९॥

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पण किं करिष्यति ॥१९०॥

जिसको स्वभाविक बुद्धि नहीं है, उसको शास्त्र क्या कर सकता है, आंखों से हीन पुरुषों को दर्पण क्या करेगा ॥१६०॥

दुर्जनं सज्जनं कर्तुमुपायो न हि भूतले ।
अपानं शतधाधौतं न श्रेष्ठमिन्द्रियं भवेत् ॥१६१॥

दुष्ट को सज्जन बनाने के लिये पृथ्वीतल में कोई उपाय नहीं है। जैसे मल के त्याग करने वाली इन्द्रिय सौ सौ बार भी धोई जाय तो भी शुद्ध न होगी ॥ १६१ ॥

आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युः परद्वेषाद्धनक्षयः ।
राजद्वेषाद्भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥१६२॥

बड़ों के द्वेष से मृत्यु होती है, शत्रु के विरोध करने से धनका क्षय होता है, राजा के द्वेष से नाश होता है और ब्राह्मण के द्वेष से कुल का क्षय होता है ॥ १६२ ॥

वरं वनं व्याघ्र गजेन्द्र सेवितं-
द्रुमालये पत्र फलाम्बु सेवनम् ।
तृणेषु शय्या शतजीर्ण वल्कलं-
न बन्धुमध्ये धनहीन जीवनम् ॥ १६३ ॥

वनमें बाघ और बड़े२ हाथियों से सेवित वृक्ष के नीचे पत्ता फल खाना, जलका पीना, घास पर सोना, सौ टुकड़े वल्कलों का पहिरना श्रेष्ठ है, किन्तु बन्धुओं के मध्य में धनहीन जाना श्रेष्ठ नहीं ॥१६३॥

T

विप्रोवृत्तस्तस्य मूलं च सन्ध्या—
वेदाः शाखा धर्म कर्माणि पत्रम् ।
तस्मात्मूलं यत्नतो रक्षणीयम्—
छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ॥ १६४ ॥

ब्राह्मण वृक्ष है, उसकी जड़ सन्ध्या है, वेद शाखा है, और धर्म कर्म ये पत्ते हैं इस कारण प्रयत्न करके जड़ की रक्षा करनी चाहिये जड़ कट जानेपर न शाखा रहेगी न पत्ते ॥१६४॥

एकवृक्षे समारूढा नाना वर्णा विहंगमाः ।
प्रभाते दिक्षुदशसु का तत्र परिवेदना ॥ १६५ ॥

नाना प्रकार के पखेरू एक वृक्षपर बैठते हैं, और प्रभात समय दिशाओं में उड़जाते हैं उसमें क्या सोच है ॥१६५॥

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो बलम् ।
बनेसिंहोमदोन्मत्तोः शशकेननिपातितः ॥१६६॥

जिसको बुद्धि है उसी को बल है, निर्बुद्धि को बल कहाँ से होगा, देखो बन में मद से उन्मत्त सिंह शशक से मारा गया ॥ १६६ ॥

का चिंताममजीवने यदिहरिर्विश्वम्भरो गीयते ।
नो चेदर्भकजीवनाय जननी स्तन्यं कथं निःसरेत् ॥
ईत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलम् ।
स्वत्पादाम्बुजसेवनेन सततं कालोमया नीयते ॥१६७॥

मेरे जीवन में क्या चिंता है यदि हरि विश्व को पालने वाला कहलाता है, ऐसा न होता, बच्चे के जीने हेतु माता के अस्तन में दूध कैसे बनाते, इसका बार२ विचार करके यदु- पति हे लक्ष्मी पति! सदा केवल आपके चरण कमल की सेवा से मैं समय को विताता हूं ॥ १९७ ॥

अन्नाद्दशगुणः पिषः पिष्टाद्दशगुणं पयः ।
पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसाद्दशगुणं घृतम् ॥१९८॥

चावल से दश गुणा आटा में गुण है, आटा से दश गुणा दूध में, दूध से अठ गुणा मांस में, और मांस से दश गुणा घी में गुण है ॥ १९८ ॥

शाकेन रोगावर्द्धन्ते पयसो वर्द्धते तनुः ।
घृतेन वर्द्धते वीर्यं मासान्मांसं प्रवर्द्धते ॥१९९॥

शाक से रोग वढ़ता है, दूध से शरीर बढ़ता है, घी से वीर्य वढ़ता है और मांस से मांस बढ़ता है ॥ १९९ ॥

दातृत्वं प्रिय वक्तृत्वं धीरत्वं मुचितज्ञता ।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वारः सहजा गुणः ॥२००॥

उदारता, प्रिय बोलना, धीरता, उचित का ज्ञान, ये अभ्यास से नहीं मिलते, ये चारों स्वाभाविक गुण हैं ॥ २०० ॥

आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रयेत् ।
स्वयमेव लयंयाति यथा राजन्यमधर्मतः ॥ २०१ ॥

जो अपनी मंडली छोड़ करके दूसरे का आश्रय लेता है, वह आप ही लय हो जाता है, जैसे राजा अधर्म से ॥ २०१ ॥

हस्ती स्थूलतनुः सचांकुशवशः किं हस्तिमात्रों कुशो-
दीपे प्रज्वलितं प्रणस्यति तमः किं दीपमात्रन्तमः ।
वज्राणापिहताः पतन्तिगिरियः किं वज्रमात्रन्नगाः-
तेजोयस्य विराजते सबलवान्स्थूलेषुकः प्रत्ययः ।२०२।

हाथी का स्थूल शरीर है, वह भी अंकुश के वश रहता है, तो क्या हस्ती के समान अंकुश है ? दीपक के जलने पर अन्धकार आपही नष्ट हो जाता है, तो क्या दीपक के तुल्य तम है ? विजली मारने से पर्वत गिर जाते हैं तो क्या बिजली पर्वत के समान है ? जिसमें तेज विराजमान रहता है वह बलवान् गिना जाता है, मोटे का कौन विश्वास है ॥ २०२ ॥

कलौ दश सहस्राणि हरिस्त्यजति मेदिनीम् ।
तदर्द्धं जान्हवी तोयं तदर्द्धं ग्रामदेवताः ॥२०३॥

कलयुग में दश हजार वर्ष के बीतने पर विष्णु पृथ्वी को छोड़ देते हैं, उसके आधे पर गंगाजी जलको, तिसके आधे बीतने पर ग्राम देवता ग्रामको ॥ २०३ ॥

गृहा सक्तस्य नो विद्या नो दया मांस भोजिनः ।
द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्त्रैणस्य न पवित्रता ॥२०४॥

गृहमें आसक्त पुरुषों को विद्या नहीं होती, मांस के

अहारी को दया नहीं होती, द्रव्यलोभी को सत्यता नहीं होती और व्यभिचारी को पवित्रता नहीं होती ॥ २०४ ॥

अन्तर्गत मलोदुष्टे तीर्थे स्नानं शतैरपि ।
न शुध्यति यथा भांडं सुरायादाहितंचयत् ॥२०५॥

जिसके हृदय में पाप है, वही दुष्ट है वह तीर्थ में सौ बार स्नान से भी शुद्ध नहीं होता, जैसे मदिरा का पात्र जलाया जाय तो भी शुद्ध नहीं होता ॥ २०५ ॥

न वेत्ति यस्य गुण प्रकर्षं—
स तं सदा निन्दति नात्र चित्रम् ।
यथा किराती करि कुम्भ लब्धां—
मुक्तां परित्यज्य विभर्ति गुंजाम् ॥२०६॥

जो जिनके गुण की परीक्षा नहीं जानता वह निरन्तर उसकी निंदा करता है, जैसे भिल्लनी हाथी के मस्तक के मोती को छोड़कर घूमची को पहचानती है ॥ २०६ ॥

येतु संवत्सरं पूर्णं नित्यं मौनेन भुञ्जते ।
युगकोटि सहस्त्रं ते स्वर्गलोके महीयते ॥ २०७ ॥

जो वर्ष भर नित्य चुपचाप भोजन करता है, वह दश हजार कोटि वर्ष तक स्वर्ग लोकमें पूजा जाता है ॥२०७॥

काम क्रोधं तथा लोभं स्वादु शृंगार कौतुके ।
अतिनिद्राऽति सेवे च विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत् ॥२०८॥

T

काम, क्रोध, लोभ, मीठी वस्तु, श्रृङ्गार, खेल, अतिनिद्रा और अतिसेवा इन आठों को विद्यार्थी छोड़ देवे ॥ २०८ ॥

अकृष्ट फल मूलानि च वनवासरतिः सदा ।
कुरुतेऽहरहः श्राद्धमृर्षिविप्रः स उच्यते ॥२०६॥

बिना खेती भूमि से उत्पन्न फल वा मूलको खाकर सदा वनवास और प्रतिदिन श्राद्ध करने वाला ब्राह्मण ऋषि कहलाता है ॥२०६॥

एकाहारेण सन्तुष्टः षट्कर्म निरतः सदा ।
ऋतुकालाऽभिगामी च सविप्रो द्विज उच्यते ॥२१०॥

एक समय के भोजन से सन्तुष्ट रह कर पढ़ना पढ़ाना यज्ञ करना कराना, दान देना और लेना इन छः कर्मों में सदा-रत हो और ऋतुकाल में स्त्री का संग करे ऐसे ब्राह्मण को द्विज कहते हैं ॥२१०॥

लौकिके कर्मणि रतः पशूनां परिपालकः ।
वाणिज्यं कृषि कर्मा यः स विप्रो वैश्य उच्यते ॥२११॥

सांसारिक कर्म में प्रीति पशुओं का पालन बनिआई और खेती करने वाला ब्राह्मण वैश्य कहलाता है ॥२११॥

लाक्षादि तैल नीलीनां कौसुम्भमधु सर्पिषाम् ।
विक्रिता मद्य मांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥२१२॥

लाक्ष आदि पदार्थ, तेल, नील, कुसुम, मधु, घी, मद्य और मांस बेचने वाला ब्राह्मण शूद्र कहा जाता है ॥२१२॥

परकार्य विहंता च दाम्भिकः स्वार्थसाधकः ।
छली द्वेषी मृदुः क्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते ॥२१३॥

दूसरे के काम को बिगाड़ने वाला, दम्भी, अपना ही कार्य कराने वाला, छली, द्वेषी, ऊपर मृदु और अन्तःकरण में क्रूर हो वह ब्राह्मण बिलार कहा जाता है ॥२१३॥

देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं परदाराभिमर्शणम् ।
निर्वाहः सर्व भूतेषु विप्रचाण्डाल उच्यते ॥२१४॥

देवता का द्रव्य और गुरु का द्रव्य जो हरता है, और पर स्त्री से संग करता है, और सब प्राणियों में निर्वाह कर लेता है वह विप्र चाण्डाल कहाता है अर्थात् (चड़ी कोपे) इस धातु से चाण्डाल पद साधु होता है ॥२१४॥

देयं भोज धनंधनं सुकृतिभिर्नोसंचितस्तस्य वै ।
श्रीकर्णस्य बलेश्चविक्रमपतेरद्यापिकीर्तिः स्थिता ॥
अस्माकं मधुदानभोगरहितं नष्टं चिरात् संचितम् ।
निर्वाणादितिनैजपादयुगलंघर्षंत्यहोमक्षिकाः ॥२१५॥

सुकृतियों को चाहिये कि भोग योग्य धन और द्रव्य को देवे उसका संचय कभी न करे श्रीकर्ण, बलि, विक्रमादित्य इन

राजाओं की कीर्ति इस समय पर्यन्त वर्त्तमान है। दान भोग से रहित दिनसे संचित हमारे लोगों का मधु नष्ट हो गया निश्चय है कि मधु मक्खियां मधु के नाश होने के कारण दोनों पांवों को घिसा करती हैं ॥२१५॥

सानंदंसदनं सुतास्तु सुधियः कांताप्रियालापिनी।
इच्छापूर्तिधनंस्वयोषितिरतिः स्वाज्ञापराः सेवकाः॥
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानंगृहे।
साधोः संगमुपासते च सततं धन्योगृहस्थाश्रमः २१६

यदि आनन्द युक्त घर मिले और लड़के पंडित हों स्त्री, मधुर भाषिणी हो, इच्छा के अनुसार धन हो, अपनी स्त्री में रति हो, आज्ञा पालक सेवक मिले अतिथि की सेवा हो, और शिव की पूजा होती जांय, प्रति दिन गृह में मीठा अन्न और जल मिले, सर्वदा साधु के संग की उपासना हो तो गृहस्थाश्रम ही धन्य है ॥२१६॥

दाक्षिण्यं स्वजनेदयापरजने शाठ्यं सदादुर्जने।
प्रीतिःसाधुजनेस्मयः खलजने विद्वज्जनेचार्जवम्॥
शौर्यंशत्रुजनेक्षमागुरुजने नारीजनेधूर्त्तता।
इत्थंयेपुरुषाःकलासुकुशलास्तेष्वेवलोकस्थितिः॥२१७॥

अपने जन में दक्षता, पर जन में दया, दुष्ट जन में शठता सदा

दुर्जन में दुष्टता साधु जनमें प्रीति, खल में अभिमान विद्वानोंमें सरलता शत्रु जन में शूरता, गुरु माता पिता आचार्य के विषय में क्षमा, स्त्री से काम पड़ने पर धूर्तता इस प्रकार से जो लोग कला में कुशल होते हैं उन्हीं में लोक की मर्यादा रहती है ॥२१७॥

हस्तौदानविवर्जितौश्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ ।
नेत्रेसाधु विलोकनेनरहितं पादौनतीर्थंगतौ ॥
अन्यायार्जित वित्तपूर्णमुदरं गर्वेणतुंगंशिरो ।
रेरेजंबुकमुञ्चमुञ्चसहसा नीचस्यनिंद्यंवपुः ॥२१८॥

हाथ दान रहित है, कान वेद शास्त्र के विरोधी हैं, नेत्रों ने साधु का दर्शन नहीं किया, पावों से तीर्थ गमन नहीं किया अन्याय से अर्जित धन से उदर भरा है और गर्व से शिर ऊँचा हो रहा है सियार ऐसे नीच निन्द्य शरीर को शीघ्र छोड़ दे ॥२१८॥

येषांश्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्तिभक्तिर्नराणां ।
येषामाभीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्तारसज्ञा ॥
येषांश्रीकृष्णलीलाललितरसकथा सादरौ नैवकर्णौ ।
धिक्तान्धिक्तान्धिगेतान्कथयतिसततंकीर्तनस्थोमृदङ्गः

श्री यशोदा सुतके पद कमल में जिन लोगों की भक्ति नहीं रहती जिन लोगों की जीभ अहीरों की कन्याओं के प्रिय के

अर्थात् श्रीकृष्ण के गुणगान में प्रीति नहीं रखती और श्रीकृष्ण जी की लीलाओं की ललित कथा का आदर जिनके कान नहीं करते उन लोगों को धिक्कार है, उन्हीं लोगों को धिक् है ऐसा कीर्तन का मृदंग सदा कहता रहता है ॥२१६॥

न दुर्जनः साधु दशामुपैति बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः ।
आमूलसिक्तःपयसाघृतेन ननिम्बवृक्षोमधुरत्वमेति ॥

निश्चय है कि दुर्जन अनेक प्रकार से सिखलाया जाय, पर उसमें साधुता नहीं आती दूध घी से नीम की जड़ (वृक्ष) सींची जाय पर उसमें मधुरता नहीं आती ॥ २२० ॥

पत्रं नैव यदा करीर विटपे दोषो वसन्तस्य किम्,
नोलुकोप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ।
वर्षा नैवपतन्तिचातकमुखे मेघस्य किं दूषणम्,
यत्पूर्वंविधिना ललाट लिखितं तन्मार्जितुंकःक्षमः ॥

यदि करील के वृक्ष में पत्र नहीं होते तो वसन्त का क्या अपराध है ? यदि उलूक को दिन में नहीं दीखता तो सूर्य्य का क्या दोष है । वर्षा चातक के मुख में नहीं पड़ती इसमें मेघ का क्या अपराध है ? पहिले ही ब्रह्माने जो कुछ ललाट में लिख रक्खा है उसे मिटाने को कौन समर्थ है ॥२२१॥

T

सतसंगाद्भवति हिं साधुता खलानां,
साधूनां न हि खलसंगतः खलत्वम् ।
आमोद कुसुम भवमं मृदेव धत्ते ।
मृद्गन्धनहि कुसुमानि धारयन्ती ॥ २२२ ॥

निश्चय है कि अच्छे के संग से दुर्जनों में साधुता आ जाती है परन्तु साधुओं में दुष्टों की संगति से असाधुता नहीं आती; फूल के गन्ध को मिट्टी ले लेती है परन्तु मिट्टी के गन्ध को फूल कभी धारण नहीं करते ॥२ २॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थ भूताहि साधवः ।
कालेन फलति तीर्थं सद्य साधुसमागमः ॥ २२३ ॥

साधुओं का दर्शन ही पुण्य है इस कारण कि साधु तीर्थ रूप हैं समय से तीर्थ फल देता है साधुओं का संग शीघ्र काम देता है ॥२२३॥

विप्रस्मिन्नगरेमहान् वसंती कस्तालद्रूमाणांगणः ।
को दातारजको ददाति वसनं प्रातर्गृहीचानिशि ।
को दक्षः परदार वित्तहरणे सर्वोऽपिदक्षोजनः ।
कस्माज्जीवसी हे सखेविपकृमिन्यायेनजीवाम्यहम् ॥

हे मित्र ! कहो इस नगर में बड़ा कौन हैं, ताड़ के पेड़ों के समूह कौन दान शील है; धोबी प्रातः काल में वस्त्र लेकर

रात्रि में देता है चतुर कौन है, दूसरे के धन और स्त्री के हरने में सब ही कुशल है हे मित्र! कैसे तुम जीते हो? विष का कीड़ा जैसे विष ही में जीता है वैसे ही मैं भी जीता हूं ॥२२४॥

न विप्र पादोदक कर्दमानि—
न वेदशास्त्रध्वनि गर्जितानि।
स्वाहा स्वधाकार विवर्जितानि—
स्मशान तुल्यानि गृहाणि तानि ॥ २२५॥

जिन घरों में ब्राह्मण के पावों के जलसे कीचड़ न भया हो और न वेद शास्त्र के शब्द का गर्जना और जो गृह स्वाहा स्वधा से रहित हो उसको स्मशान के समान समझना चाहिये ॥२२५॥

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्म संग्रहः ॥२२६॥

शरीर अनित्य है विभव भी सदा नही रहता, मृत्यु सदा निकट ही रहती है इस कारण सब मनुष्य को धर्म सदा संग्रह करना चाहिये ॥२२६॥

निमन्त्रणोत्सवा विप्रा गावोनव तृणोत्सवाः।
पत्युत्साहवती नारी अहं कृष्ण रणोत्सवः ॥२२७॥

निमन्त्रण ब्राह्मणों का उत्सव है, नवीन घास गाइयों का

उत्सव है पति के उत्साह से स्त्रियों को उत्साह होता है। हे कृष्ण ! मुझको रण ही उत्सव है ॥२२७॥

धर्मेतत्परता मुखेमधुरता दानेसमुत्साहता—
मित्रेवंचकतागुरौ विनयता चित्तोतिगंभीरता ।
आचारे शुचितागुणेरसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता—
रूपेसुन्दरता शिवेभजनता स्वय्यस्तिभो राघव ।२२८

धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता, दान में उत्सुकता, मित्र के विषय में निरछलता गुरु में नम्रता अन्तःकरण में गंभीरता आचार में पवित्रता, गुण में रसिकता शास्त्रों में विशेषता रूप में सुन्दरता और शिव की भक्ति हे राघव ! ये सब आप ही में है ॥२२८॥

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिंतामणि प्रस्तरः—
सूर्यस्तीव्रकरः शशोत्त्यकरः त्वारोदिवारां निधिः।
कामोनष्टतनुर्वली दितिसुतो नित्यं पशुः कामगौः—
नैतांस्तेतुलयामि भो रघुपते कस्योपमादीयते ॥२२९

कल्पवृक्ष काठ है, सुमेरु अचल है चिंतामणि पत्थर सूर्य की किरणें अत्यन्त ऊष्ण हैं चन्द्रमा की किरण क्षीण जाती हैं समुद्र खारा है काम को शरीर नहीं हैं बलि दैत्य कामधेनु गाय पशु ही है इस कारण आपके साथ इन

तुलना नहीं दे सकते। हे रघुपति ! फिर आपको किसकी उपमा दी जाय ॥२२९॥

अनालोक्य व्ययंकर्ता अनाथः कलहप्रियः।
आतुरः सर्वक्षेत्रेषु नरः शीघ्रं विनश्यति ॥२३०॥

बिना विचारे खर्च करने वाला, सहायक के न रहने पर कलह में प्रीति रखने वाला और सब जाति की स्त्रियों में भोग के लिये व्याकुल होने वाला पुरुष शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥२३०॥

धन्नधान्य प्रयोगेषु विद्या संग्रहणे तथा।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥२३१॥

धन धान्य के व्यवहार में, वैसे ही विद्या के पढ़ने पढ़ाने में, आहार और व्यवहार में लज्जा को छोड़ेगा वही सुखी होगा ॥२३१॥

जलविंदु निपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।
सहेतुः सर्व विद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ॥२३२॥

क्रम २ से जलके एक २ बुन्द के गिरने से घड़ा भर जाता है; यही सब विद्या, धर्म और धन के भी संग्रह के कारण है ॥२३२॥

वयसः परिणामेऽपि यः खलः खल एव सः।
संपक्वमपिमाधूर्यं नोपयातिंद्रवारुणम् ॥२३३॥

वय के परिणाम पर भी जो खल रहता है, सो खलही

बना रहता है। अत्यन्त पकी इमली भी कभी मीठी होती है? ॥२३३॥

गते शोको न कर्तव्यो भविष्यंनैव चिंतयेत् ।
वर्तमानेन कालेन प्रवर्तंते विचक्षणाः ॥२३४॥

गत वस्तुका शोक नहीं करना चाहिये और भावी की चिंता कुशल लोग नहीं करते, किन्तु वर्तमान कालके अनुरोध से प्रवृत्त होते हैं। ॥२३४॥

स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषाः पिता ।
ज्ञातयः स्नानपानाभ्यां वाक्यदानेन पंडिताः ॥२३५॥

निश्चय है कि देवता, सत्पुरुष और पिता ये प्रकृति से सन्तुष्ट होते हैं; पर बन्धु स्नान और पान से और पण्डित जन प्रियवचन से। ॥२३५॥

अहोवतविचित्राणि चरितानिमहात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणायमन्यन्ते तद्भारेणनमन्ति च ॥२३६॥

आश्चर्य है कि महात्माओं के विचित्र चरित्र हैं, लक्ष्मी को तृण सम मानते हैं और यदि मिल जाती है तो उसके भार से नम्र हो जाते हैं ॥२३६॥

यस्यस्नेहो भयंतस्य स्नेहो दुःखस्य भाजनम् ।
स्नेहमूलानि दुःखानि तानित्यक्त्वा वसेत्सुखम् २३७

जिसको किसी में प्रीति रहती है उसी का भय होता है,

स्नेह ही दुःख का मूल और स्नेह ही दुःख का कारण है इसलिये उसे छोड़ कर सुखी होना उचित है ॥२३७॥

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्था ।
द्वावेते सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥२३८॥

आनेवाले दुःखों का पहिले से उपाय करने वाला और जिसकी बुद्धि में विपत्ति आ जाने पर शीघ्र ही उपाय भी आ जाता हो, वे सदा सुख से बढ़ते हैं और जो सोचता है कि, भाग्यवश जो होने वाला है अवश्य होगा, वह विनष्ट हो जाता है ॥२३८॥

राज्ञिधर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः ।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ॥२३९॥

यदि धर्मात्मा राजा हो तो प्रजा भी धर्मिष्ट, पापी हो तो पापी, और सम हो तो सम होती है अर्थात् सब प्रकार राजा के अनुसार चलती है; जैसा राजा होता है वैसा ही प्रजा होती है ॥२३९॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्यैव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥२४०॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इनमें से जिसको एक भी नहीं रहता बकरी के गले के स्तन के समान उसका जन्म निरर्थक है ॥२४०॥

दह्यमानाः सुतिव्रेण नीचाः परयशोऽग्निना ।

अशक्तास्तत्पदंगंतुं ततोनिंदां प्रकुर्वते ॥२४१॥

दुर्जन दूसरे की कीर्ति रूप दुस्सह अग्नि से जलकर उसके पद को नहीं पाते इसलिये उसकी निन्दा करने लगते हैं ॥२४१॥

बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः ।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥२४२॥

विषयों में आसक्त मन बन्धन का हेतु है, विषय से रहित मुक्ति का, मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है ॥२४२॥

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनोयाति तत्र तत्र समाधयः ॥२४३॥

परमात्मा के ज्ञान से देह के अभिमान के नाश हो जानेपर जहाँ जहाँ मन जाता है वहाँ समाधिही है ॥२४३॥

ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम् ।
दैवायत्तं यतः सर्वं तस्मात्सन्तोषवान् भवेत् ॥२४४॥

मन का अभीप्सित सब सुख किसको मिलता है ? जिस कारण सब दैव के वश है । इससे संतोष पर भरोसा करना चाहिये ॥२४४॥

अनवस्थित कार्यस्य न जने न वने सुखम् ।
जनोदहतिसंसर्गाद्वनं संगविवर्जितात् ॥२४५॥

जिसके कार्य की स्थिरता नहीं रहती वह न जन में सुख

T

पाता है न वन में, जन उसको संसर्ग से जलाता है और वन में संग के त्याग से ॥२४५॥

यथा खात्वा खनित्रेण भूतले वारि विंदति ।
तथागुरुगतांविद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥२४६॥

जैसे खनने के साधन से खन के पाताल के जल को प्राणी पाता है वैसेही गुरुगत विद्या को सेवा से शिष्य पाता है ॥२४६॥

कर्मायत्तं फलंपुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणि ।
तथापि सुधियश्चार्याः सुविचार्यैव कुर्वति ॥२४७॥

यद्यपि फल पुरुष के कर्मके आधीन रहता है और बुद्धि भी कर्म के अनुसार ही चलती है तथापि विवेकी महात्मा लोग विचारही के काम करते हैं ॥२४७॥

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिवन्दते ।
श्वानयोनिशतंभुक्त्वाचांडालेष्वभिजायते ॥२४८॥

जो एक अक्षर भी देने वाले गुरुकी बन्दना नहीं करता वह कुत्ते की सौ योनि को भोगकर चाण्डालों में जन्म लेता है ॥२४८॥

युगान्तेप्रचलेन्मेरुः कल्पांते सप्तसागराः ।
साधवः प्रतिपन्नार्थान्नचलन्तिकदाचन ॥२४९॥

युग के अन्त में सुमेरु भी चलायमान होता है और कल्प के अन्त में सातों सागर, परन्तु साधू लोग स्वीकृत अर्थ से कभी नही विचलते ॥२४९॥

पृथिव्यांत्रीणिरत्नानि अन्नमापः सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंख्याविधीयते ॥२५०॥

पृथ्वी में जल अन्न और प्रिय वचन ये तीन ही रत्न हैं, मूर्खों ने पाषाण के टुकड़ों को रत्न में गिना है ॥२५०॥

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानिदेहिनाम् ।
दारिद्र्यदुःखरोगाश्च बन्धनव्यसनानि च ॥२५१॥

जीवों को अपने अपराध रूप वृक्ष से दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन और विपत्ति ये फल होते हैं ॥२५१॥

पुनर्वित्तंपुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही ।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः ॥२५२॥

धन, मित्र, पृथ्वी ये सब बारम्बार मिलते हैं, परन्तु शरीर बारम्बार नहीं मिलता ॥२५२॥

बहुनां चैवसत्वानाम् समवायोरिपुंजयः ।
वर्षाधाराधरोमेघ स्तृणैरपि निवार्यते ॥२५३॥

निश्चय है कि बहुत जनों का समुदाय शत्रु को जीत लेता है तृण समूह भी वर्षा की धारा के धरने वाले मेघको निवारण करता है ॥२५३॥

जले तैलं खलेगुह्यं पात्रं दानं मनागपि ।
प्राज्ञेशास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ॥२५४॥

जल में तेल, दुर्जन में गुप्त वार्ता, सुपात्र में दान बुद्धिमान

T

में शास्त्र ये थोड़े भी हों तो वस्तु की शक्ति से आपसे आप विस्तार को प्राप्त हो जाते हैं ॥२५४॥

धर्माख्याने श्मशाने च रोगिणां या मतिर्भवेत् ।
सा सर्वदैवतिष्ठेच्चेत्कोन मुच्येत बन्धनात् ॥२५५॥

धर्म विषयक कथा के समय, श्मशान पर और रोगियों को जो बुद्धि उत्पन्न होती है, वह यदि सदा रहती तो कौन संसार बंधन से मुक्त न होता ॥२५५॥

उत्पन्नपश्चातापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी ।
तादृशी यदि पूर्वस्यात् कस्यनस्यान्महोदयः ॥२५६॥

निन्दित कर्म के करने के पश्चात् पछताने वाले पुरुष को जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है वैसी यदि पहिले होती तो किसको बड़ी समृद्धि न होती ॥२५६॥

यस्माच्चप्रियमिच्छेतु तस्य ब्रूयात्सदाप्रियम् ।
व्याधोमृगवधंकर्तुं गीतं गायति सुस्वरम् ॥२५७॥

जिसको जिसके प्रिय की वांछा हो सदा उससे प्रिय बोलना उचित है, व्याध मृगा के वध के निमित्त मधुर स्वर से गीत गाता है ॥२५७॥

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्थानफलप्रदाः ।
सेव्यतांमध्यभागेन राजवह्निं गुरु स्त्रियः ॥२५८॥

अत्यन्त निकट रहने पर विनाश के हेतु होते हैं, दूर रहने से फल नहीं देते । इस हेतु राजा, अग्नि, गुरु और स्त्री इनको मध्य अवस्था से सेवना चाहिये ॥२५८॥

अग्निरापः स्त्रियोमूर्खः सर्पोराजकुलानि च ।
नित्यं यत्नेनसेव्यानि सद्यः प्राणहराणिषट् ॥२५६॥

अग्नि, जल, स्त्री, मूर्ख, सर्प और राजा के कुल ये सावधानता से सेवने के योग्य हैं, ये छः शीघ्र प्राण के हरने वाले होते हैं ॥२५९॥

स जीवति गुणा यस्य यस्य धर्मः सजीवती ।
गुणधर्मविहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम् ॥२६०॥

वही जीता है जिसको गुण है, वही जीता है जिसको धर्म है, गुण और धर्म से हीन पुरुष का जीना व्यर्थ है ॥२६०॥

यदीच्छसिवशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
पुरापंचदशास्येभ्यो गांचरन्ति निवारय ॥२६१॥

जो एकही कर्म से जगत को वश किया चाहतेहो तो पहिले पन्द्रहों के मुख से मन गौ को निवारण करो; तात्पर्य यह है कि आंख, नाक, कान, जीभ त्वचायें, पाचों ज्ञानेन्द्रियां हैं। मुख, हाथ, पांव, लिंग, गुदा ये पांच कर्मेन्द्रियां हैं। रूप शब्द, रस, गंध, स्पर्श ये पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं; इन पन्द्रहोंसे मनरूपी गौ को निवारण करना उचित है ॥२६१॥

प्रस्ताव सदृशं वाक्यं स्वभाव सदृशं प्रियम् ।
आत्मशक्तिसमंकोपं योजानातिसपंडितः ॥२६२॥

प्रसंग के योग्य वाक्य, प्रकृति के सदृश प्रिय और अपनी शक्ति के अनुसार कोपको जो जानता है वह बुद्धिमान है ॥२६२॥

T

एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति विक्षितः ।
कुणपंकामिनिर्मांस योगिभिः कामिभिःश्वभिः॥२६३॥

एक ही देह, रूप, वस्तु तीन प्रकार की देख पड़ती है; योगी लोग उसे अति निन्दित मृतक रूप से, कामी पुरुष कांता रूप से और कुत्ते मांस रूपसे देखते हैं ॥२६३॥

सुसिद्धमौषधंधर्मं गृहच्छिद्रं च मैथुनम् ।
कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्नप्रकाशयेत् ॥२६४॥

सिद्ध औषधि, धर्म, अपने घर का दोष, मैथुन, कुअन्नका भोजन, निंदितवचन इनका प्रकाश करना बुद्धिमानों को उचित नहीं है ॥२६४॥

तावन्मौनेननीयन्ते कोकिलैश्चैववासराः ।
यावत्सर्वजनानन्ददायिनीवाक्प्रवर्तते ॥२६५॥

जबलों कोकिल मौन साधन में दिन विताती है तबलौं सबजनों को आनन्द देनेवाली वाणी प्रारम्भ नहीं होती।।२६५॥

धर्मं धनं च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम् ।
सुगृहीतं च कर्तव्यमन्यथा तु न जीवति ॥२६६॥

धर्म, धन धान्य, गुरु का वचन और औषध यदि ये सुगृहीत हों तो इनको भली भांति से करना चाहिये; जो ऐसा नहीं करता वही नहीं जीता ॥ २६६ ॥

त्यजदुर्जनसंसर्गं भजसाधुसमागमम् ।
कुरुपुण्यमहोरात्रं स्मरनित्यमनित्यतः ॥२६७॥

T

खल का संग छोड़ साधु की संगति को स्वीकार कर दिन रात पुण्य किया करे और ईश्वर का नित्य स्मरण करे इस कारण कि संसार अनित्य है ॥२६७॥

यस्य चित्तंद्रवीभूतम् कृपया सर्व जंतुषु ।
यस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटा भस्मलेपने ॥२६८॥

जिसका चित्त सब प्राणियों पर दया से पिघल जाता है उसको ज्ञान, मोक्ष, जटा और विभूति के लेपन से क्या ? ॥२६८॥

एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत् ।
पृथिव्यांनास्तितद्रव्यं यद्दत्वाचानृणोभवेत् ॥२६९॥

गुरु जो शिष्य को एक अक्षर भी उपदेश करते हैं उस निमित्त पृथ्वी में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जिसको देकर शिष्य उऋण हो ॥२६९॥

खलानां कंटकानां च द्विविधैव प्रतिक्रियः ।
उपानन्मुख भंगो वा दूरतोवा विसर्जनम् ॥२७०॥

खल और काँटे इनको दबाने को दोही प्रकार का उपाय है। जूता से मुख को तोड़ना वा दूर से त्याग करना ॥२७०।

कुचैलिनंदन्तमलोपधारिणंबह्वाशिनन्निष्ठुरभाषिणंच।
सूर्योदयेचास्तमितेशयानंविमुञ्चतिश्रीर्यदिचक्रपाणिः॥

वस्त्र के मैला रखने वाले को, दांतों के मल को दूर न करने वाले को, बहुत भोजन करने वाले को, कटुवादी को, सूर्य के उदय और अस्त के समय में सोने वालों को लक्ष्मी छोड़ देती है चाहे वह विष्णु भी हो तो क्या ॥२७१॥

T

त्यजंति मित्राणि धनैर्विहीनं दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च।
तेचार्थवन्तं पुनराश्रयंते ह्यर्थोहिलोके पुरुषस्य बंधुः २७२

मित्र, स्त्री, सेवक और बन्धु ये धनहीन पुरुषों को छोड़ देते हैं, वही पुरुष यदि धनी हो जाता है तो फिर उसी का आश्रय करते हैं अर्थात् धन ही लोक में बन्धु है ॥२७२॥

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते एकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥२७३॥

अनीत से अर्जित धन दश वर्ष पर्यन्त ठहरता है ग्यारहवें वर्ष मूल सहित नष्ट हो जाता है ॥२७३॥

अयुक्तंस्वामिनोयुक्तं युक्तंनीचस्य दूषणम् ।
अमृतं राहवे मृत्युर्विषं शंकर भूषणम् ॥२७४॥

अयोग्य वस्तु भी समर्थ को योग्य हो जाती है और योग्य भी दुर्जन को दूषण कारक होती है। अमृत ने राहु को मृत्यु दिया और विष शंकर का भूषण हुआ ॥२७४॥

तद्भोजनं यद् द्विज भुक्तशेषं–
तत्सौहृदं यत्क्रियते परस्मिन्।
सा प्राज्ञता या न करोति पापं–
दंभं विना यत् क्रियते स धर्मः ॥२७५॥

वही भोजन है जो ब्राह्मण के भोजन से बचा है, वही मित्रता है जो दूसरे में की जाती है वही बुद्धिमान है जो पाप नहीं करता और जो विना दम्भ के किया जाता है वही धर्म है ॥२७५॥

मणिलुंठति पदाग्रे काचः शिरसि धार्यते।

T

क्रयविक्रयवेलायां काचःकाचा मणिर्मणिः ॥२७६॥

मणि पाँव के आगे लोटती हो और कांच शिर पर भी रक्खा हो परन्तु क्रय विक्रय के समय कांच कांच ही और मणि मणि ही है ॥२७६॥

अनन्त शास्त्रं बहुलाश्च विद्या–
अल्पश्च कालो बहु विघ्नता च ।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं–
हंसो यथा क्षीरमिवांबुमिश्रम ॥२७७॥

शास्त्र अनन्त है और विद्या बहुत है, काल थोड़ा हैं और विघ्न बहुत हैं, इस कारण जो सार है उसको लेना उचित है, जैसे हंस जल के मध्य से दूध को ले लेता है ॥२७७॥

बंधननानिखलुसंतिबहुनिप्रेमरज्जुकृत बंधनमन्यत् ।
दारुभेदनिपुणोऽपिषडंघ्रिःनिष्क्रियोभवतिपंकजकोषे ॥

बन्धन तो बहुत हैं परन्तु प्रीति की रस्सी का बन्धन और ही हैं, काठ के छेदने में निपुण भँवरा भी कमल के कोश में निर्व्यापार हो जाता है ॥२७८॥

छिन्नोपि चंदनतरुर्न जहाति गन्धं ।
वृद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम् ॥
यन्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः ।
क्षीणेऽपिनत्यजति शीलगुणान्कुलीनः ॥२७९॥

चन्दन का कटा वृक्ष गन्ध को त्याग नहीं देता, बूढ़ा गज भी रति विलास को नही छोड़ता, कोल्हू में पेरी ऊँख भी

T

मधुरता नहीं छोड़ती दरिद्री भी कुलीन और सुशीलता आदि गुणों का त्याग नहीं करता ॥२७६॥

नध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये ।
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुः धर्मोऽपिनोपार्जितः ।
नारीपीनपयोधरोरु युगलं स्वप्नेऽपिनालिंगितं ।
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदंकुठाराबयम् ॥२८०॥

संसार में मुक्त होने के लिये विधिवत् ईश्वर के पद का ध्यान मुझसे न हुआ, स्वर्ग द्वार के फाटक तोड़ने में समर्थ धर्म का भी अर्चन न किया और स्त्री के दोनों पीनस्तन और जघों का आलिंगन स्वप्न में भी न किया अर्थात् मैं माता के युवापन रूप वृक्ष के काटने में केवल कुल्हाड़ी ही हुआ ॥२८०॥

कोऽर्थान्प्राप्यनगर्वितो विषयिणःकस्यापदोऽस्तंगताः ।
स्त्रीभिःकस्यनखंडितं भुविमनः कोनामराज्ञःप्रियः ।
कः कालस्य न गोचरत्वमगमत् कोर्थिगतो गौरवम् ।
कोवादुर्जनदुर्गुणेषु पतितः क्षेमेणयातः पथि ॥२८१॥

धन पाकर गर्वी कौन न हुआ, किस विषयी की विपत्ति नष्ट हुई पृथ्वी में किसके मन को स्त्रियों ने खण्डित न किया, राजा को प्रिय कौन हुआ, काल के बश कौन नहीं हुआ, किस याचक ने गुरुता पाई, दुष्टता में पड़कर संसार के पथ में कुशलता से कौन पार गया ? ॥२८१॥

ननिर्मिताकेन नदृष्टपूर्वा नश्रूयतेहेममयी कुरंगी ।
तथाऽपितृष्णारघुनंदनस्यविनाशकालेविपरीतबुद्धिः ॥

सोने की मृगी न पहिले किसी ने रची, न देखी और न किसी को सुन पड़ती है, तौ भी रघुनन्दन की तृष्णा उसपर हुई अर्थात् विनाश के समय बुद्धि विपरीत हो जाती है ॥२८२॥

गुणैः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योपि सम्पदः ।
पूर्णेन्दुः किं तथावंद्यो निष्कलंको यथाकुशः ॥२८३॥

सर्व स्थान में गुण पूछे जाते हैं बड़ी सम्पत्ति नहीं पूजी जाती, पूर्णिमा का चन्द्रमा भी क्या वैसा वन्दित होता है जैसा कि विना कलंक के द्वितीया का दुर्बल चन्द्र ॥२८३॥

परमोक्तगुणोयस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भवेत् ।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्याऽपि तैर्गुणैः ॥२८४॥

जिसके गुणों को दूसरे लोग वर्णन करते हैं वह निर्गुण भी हो तो गुणवान कहा जाता है, इन्द्र भी अपने गुणों की आप प्रशंसा करे तो उससे लघुता पाता है ॥२८४॥

विवेकिनमनुप्रासा गुणायांति मनोज्ञताम् ।
सुतरांरत्नमाभाति चामीकरनियोजितम् ॥२८५॥

विवेकी को पाकर गुण भी सुन्दरता पाता है जब रत्न सोने में जड़ा जाता है तब अत्यन्त सुन्दर देख पड़ता है ॥२८५॥

गुणैः सर्वज्ञ तुल्योपि सीदत्येको निराश्रयः ।
अनर्घ्यमपिमाणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥२८६॥

गुणों से ईश्वर के सदृश भी निरालम्ब अकेला पुरुष दुःख पाता है । अमोल माणिक्य ने भी सोना का अवलम्बन किया अर्थात् उसमें जड़ जाने की अपेक्षा करता है ॥२८६॥

साहित्य प्रकरण

दूसरा भाग

अति क्लेशेन ये ह्यर्था धर्मस्यातिक्रमेणतु ।
शत्रुणां प्रणिपातेन तेऽर्थामाभवन्तुमे ॥२८७॥

अत्यन्त पीड़ा से, धर्म त्याग से और वैरियों के नमन से जो धन होता है, सो ईश्वर मुझको न प्राप्त हो ॥२८७॥

किंतयाक्रियते लक्ष्म्या यावधूरीवकेवला ।
यातुवेश्येवसामान्या पथिकैरपिभुज्यते ॥२८८॥

उस सम्पत्ति को लोग क्या कर सकते हैं जो धूल के समान असाधारण है, जो वेश्या के समान सर्व साधारण हो पथिकों के भी भोग में आ सकती हो, वह स्त्री की सदृश किस कामकी ? ॥२८८॥

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषुचाहारकर्मसु ।
अतृप्ताः प्राणिना सर्वेयातायास्यंतीयान्ति च ॥२८९॥

धन मे, जीवन में, स्त्रियों में, और भोजन में, अतृप्त होकर सब प्राणी गये, जायेंगे और जाते हैं इसलिये ईश्वर का भजन करना श्रेष्ठ है ॥ २८९ ॥

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलि क्रिया ।
न क्षीयते पात्रदानम् भयं सर्वदेहिनाम् ॥२९०॥

T

दान, यज्ञ, होम, बलि ये सब नष्ट हो जाते हैं, परन्तु सत्पात्र के दिये हुए दान और सब जीवों का अभयदान, ये क्षीण नहीं होते हैं ॥२६०॥

तृणं लघुतृणात्तूलं तूलादपि च याचकः ।
वायुनाकिन्ननीतोऽसौ मामयं याचयिष्यति ॥२६१॥

तृण सबसे लघु होता है, तृण से रुई हलकी होती है, रुई से भी लघु याचक है, तब इसे वायु क्यों नहीं उड़ा ले जाती ? यही कारण है कि वह समझती है, कि यह मुझसे भी मांगेगा ॥२६१॥

वरं प्राणपरित्यागोमानभंगेन जीवनात् ।
प्राणत्यागे क्षणंदुखं मान भंगेदिनेदिने ॥२६२॥

मान गंवाकर जीने से प्राण का त्याग अच्छा है, कारण कि प्राण त्याग से केवल क्षण भर का दुःख होता है और मान के नष्ट होने पर दिन दिन दुःख होता है ॥२६२॥

संसारकटुवृक्षस्य द्वेफले अमृतोपमे ।
सुभाषितं च सुस्वादु संगतिः सुजनेजने ॥२६३॥

संसार रूप कड़वे वृक्ष के दो फल अमृत समान हैं, मधुर प्रिय वचन और सत्पुरुषों की संगति ॥२६३॥

जन्मजन्मयदभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः ।
तेनैवाभ्यासयोगेन देहीचाभ्यस्यतेपुनः ॥२६४॥

T

जो जन्म २ दान अध्ययन तप का अभ्यास किया करता है उस अभ्यास के योग से देही उसी अभ्यास को फिर २ करता रहता है ॥२६४॥

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम् ।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम् ॥२६५॥

जो विद्या पुस्तक ही में रहती है और जो धन दूसरे के हाथों में रहता है, काम पड़ जाने पर न वह विद्या है और न वह धन है ॥२६५॥

पुस्तकं प्रत्ययाधीनं नाधीतं गुरुसन्निधौ ।
सभामध्येनशोभन्ते जारगर्भा इवस्त्रियः ॥२६६॥

जिन्होंने केवल पुस्तक से पढ़ा और गुरु के निकट न पढ़ा वे सभा के बीच वैसे ही नहीं शोभते जैसे व्यभिचार द्वारा, गर्भवती स्त्रियां ॥२६६॥

कृतेप्रतिकृतिंकुर्यात् हिंसने प्रतिहिंसनम् ।
तत्रदोषो न पतति दुष्टेदुष्टं समाचरेत् ॥२६७॥

अपने प्रति उपकार करने पर प्रत्युपकार करना और मारने परमारना इसमें अपराध नही होता, इस कारण कि दुष्ट के साथ दुष्टता का ही आचरण करना उचित होता है ॥२६७॥

T

यद्दूरं यदुराध्यं यश्चदूरे व्यवस्थितम् ।
तत्सर्वं तपसासाध्यं तपोहिदुरतिक्रमम् ॥२६८॥

जो दूर है और जो कठिनता से प्राप्त हो सकता है वे सब तप परिश्रम (उद्योग) से सिद्ध हो सकते हैं, इस कारण (उद्योग) तप ही प्रबल है ॥२६८॥

लोभश्चेद्गुणेन किंपिशुनता यद्यस्तिकिंपातकैः ।
सत्यं चेत्तपसाचकिंशुचिमनो यद्यस्तितीर्थेनकिं ॥
सौजन्यंयदि किंगुणैःसुमहिमायद्यस्तिकिंमंडनैः ।
सद्विद्यायदि किंधनैरपयशोयद्यस्तिकिंमृत्युना ॥२६६॥

यदि लोभ है तो दूसरे दोष से क्या ? यदि चुगली है तो और पापों से क्या ? यदि सत्यता है तो तप से क्या ? मन स्वच्छ है तो तीर्थ से क्या ? यदि सज्जनता है तो दूसरे गुणों से क्या ? जो महिमा है तो भूषण से क्या ? यदि अच्छी विद्या है तो धन से क्या और यदि अपयश है तो मृत्यु से क्या अर्थात् अपकीर्ति मृत्यु से अधिक कष्टदायक है ॥२६६॥

पितारत्नाकरोयस्य लक्ष्मी र्यस्यसहोदरी ।
शंखोभिक्षाटनं कुर्यान्नादत्तमुपतिष्ठति ॥३००॥

जिसका पिता रत्नों की खान समुद्र है लक्ष्मी जिसकी बहिन है ऐसा शंख भीख मांगता है, सच है पहिले विना दिये नहीं मिलता ॥३००॥

अशक्तस्तुभवेत्साधु ब्रह्मचारीचनिर्धनः ।
व्याधिष्टोदेवभक्तश्च वृद्धानारीपतिव्रता ॥३०१॥

'शक्तिहीन होने पर साधु होता है, निर्धन ब्रह्मचारी होता है, रोगग्रस्त देवता का भक्त होता है, और वृद्धा स्त्री पतिव्रता होती है ॥३०१॥

नान्नोदकं समंदानं न तिथिर्द्वादशी समा ।
न गायत्र्याः परोमंत्रो न मातुर्दैवतंपरम् ॥३०२॥

अन्न, जल के समान कोई दान नहीं है, न द्वादशी के समान कोई तिथि है और न गायत्री से बढ़कर कोई मन्त्र है, न माता से बढ़कर कोई देवता है ॥३०२॥

तक्षकस्य विषंदंते मक्षिकायाः विषंशिरे ।
वृश्चिकस्यविषंपृच्छे सर्वांगेदुर्जनो विषम् ॥३०३॥

सांप के दांत में, मक्खी के शिर में और बिच्छू की पूंछ में विष रहता है पर दुर्जन के सब अङ्गों में विषही भरा रहता है ॥३०३॥

पत्युराज्ञां विनानारीउपोष्य व्रतचारिणी ।
आयुष्यं हरतेभर्तुः सानारीनरकं व्रजेत् ॥३०४॥

पति की आज्ञा विना उपवास व्रत करने वाली स्त्री स्वामी की आयु को हरती है और वह स्त्री घोर नरक में जाती है ॥३०४॥

T

न दानैः शुद्धते नारी नोपवास शतैरपि ।
न तीर्थसेवयातद्वद्भर्तुः पादोदकैर्यथा ॥३०५॥

स्त्री न तो दानों से शुद्ध होती है न सैकड़ों उपवास और तीर्थों के सेवन से जैसी कि स्वामी के चरणोदक से शुद्ध होती है ॥३०५॥

पादशेषं पीनशेषं संध्याशेषं तथैव च ।
श्वानमूत्रंसमंतोयं पीत्वाचांद्रायणं चरेत् ॥३०६॥

पांव धाने से जो जल शेष रहता है, जल पीने से जो बच जाता है और सन्ध्या करने पर जो अवशिष्ट जल रहता है सो कुत्ते के मूत्र के समान है इसको पीने से चान्द्रायण व्रत करना चाहिये इसके विना शुद्धता नहीं होती ॥३०६॥

दानेनपाणिर्नतुकंकणेन स्नानेनशुद्धिर्नतुचंदनेन ।
मानेनतृप्तिर्नतुभोजनेन ज्ञानेनमुक्तिर्नतुमंडनेन ॥३०७॥

दान से हाथ शोभता है, कंकण से नहीं, स्नान से शरीर शुद्ध होती है चन्दन से नहीं, आदर से तृप्ति होती है भोजन से नहीं ज्ञान से मुक्ति होती है छापा तिलकादि भूषणों से नहीं ॥३०७॥

नापितस्यगृहेक्षौरं पाषाणेगंधलेपनम् ।
आत्मरूपं जलेपश्यन् शक्रस्यापिश्रियं हरेत् ॥३०८॥

T

नाई के घर पर बाल बनाने वाला, पत्थर पर से लेकर चन्दन लगाने वाला, अपने मुख को पानी में देखने वाला इन्द्र भी हो तो उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है ॥३०८॥

सद्य शक्तिहरातुंडी सद्य प्रज्ञाकरीवचः ।
सद्य शक्तिहरानारी सद्य शक्तिकरं पयः ॥३०९॥

कुन्दरु शीघ्र ही बुद्धि हर लेता है और वच झटपट बुद्धि देता है, स्त्री तुरन्तही शक्ति हर लेती है, दूध शीघ्र ही बल को दता है ॥ ३०९ ॥

परोपकारएं येषां जागर्तिहृदयेसताम् ।
नश्यंतिविपदस्तेषां संपदःस्युः पदेपदे ॥३१०॥

जिन सज्जनों के हृदय में परोपकार जागता है उनकी विपत्ति नष्टहो जाती है और पद २ पर सम्पत्तिहोती है। ३१०

यदिरामा यदिचरमायदितनयोविनयगुणो पेतः ।
तनये तनयोत्पतिः सुखरनगरेकिमाधिक्यम् ॥३११॥

यदि सद्गुणी स्त्री है, यदि लक्ष्मी भी बर्तमान है, यदि पुत्र सुशील गुणों से युक्त है, और पुत्र के पुत्र की भी उत्पत्ति हुई तो फिर देव लोक में इससे अधिक क्या है ॥ ३११ ॥

आहार निद्रा भय मैथुनानि—

T

समानि चेतानि नृणां पशूनाम्।

ज्ञानं नराणा मधिको विशेषो—

ज्ञानेन हीना पशुभिः समानाः ॥३१२॥

भोजन, निद्रा, भय, मैथुन ये मनुष्य और पशुओं के समान ही हैं, किन्तु मनुष्यों को केवल ज्ञान ही विशेष है ज्ञान से रहित नर पशु के समान है ॥ ३१२ ॥

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्ण तालैः

दूरी कृतां करी वरेण मदांध बुध्या।

तस्यैव गंड युग मंडन हानि रेषा—

भृंगाः पुनर्विकच पद्मवनेवसंति ॥३१३॥

यदि मदान्ध बुद्धि से गजराज मद प्रेमी भौंरों को हटा तो यह उसीके दोनों गण्डस्थल की शोभा की हानि हुई, भौंरा तो फिर भी विकसित कमल बनमें ही रहता है। तात्पर्य यह है कि यदि किसी निर्गुण मदान्ध राजा के निकट कोई गुणी जा पड़े तो उस समय मदान्धों ने गुण का आदर न किया तो मानों अपनी लक्ष्मी की शोभाकी हानि किया है, क्योंकि काल की कोई सीमा नहीं है और पृथ्वी अनन्त है, गुणी का सत्कार कहीं न कहीं किसी समय में हो होगा ॥ ३१३ ॥

T

राजा वेश्या यमश्चाग्निस्तस्करो बालयाचकः ।
पर दुःखं न जानन्ति अष्टमो ग्रामकण्टकः ॥३१४॥

राजा वेश्या. यम, अग्नि और बालक याचक और आठवां ग्राम कटण्क अर्थात् ग्राम निवासियों को पीड़ा देकर अपना निर्वाह करने वाला ये दूसरे के दुःख को नहीं जानते ॥३१४॥

अधः पश्यसि किं बाले पतितं तव किं भुवि ।
रे रे मूर्ख न जानासि गतं तारुण्यमौक्तिकम् ॥३१५॥

हे बाले ! नीचे को क्या देखती हो तुम्हारा पृथ्वी पर क्या गिर पड़ा है! तब स्त्री ने कहा, रे रे मूर्ख ! नहीं जानता कि मेरा तरुणता रूपी मोती चली गई, उसी को मैं ढूंढ़ रही हूं ॥३१५॥

व्यालाश्रयापि विफलापि सकण्टकापि
चक्रापि पंकिलभव्वापि दुरासदापि ॥
गंधेन बन्धुरसि केतकि सर्वजन्तोः
एको गुणः खलु निहंति समस्तदोषान् ॥३१६॥

हे केतकी ! यद्यपि तूं सापों का घर है तो भी निष्फल है तुझ में कांटे भी हैं टेढ़ी भी है कीचड़ से तेरी उत्पत्ति है और तू दुःख से मिलती भी है, तथापि एक गन्धगुण से सब प्राणियों की बन्धु हो रही है। निश्चय है कि एक भी गुण सम्पूर्ण दोष को नाश कर देता है ॥३१६॥

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्मांडभांडोदरे

विष्णुर्येन दशावतार गहने क्षिप्तः सदा संकटे ॥
रूद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ३१७

ब्रह्माण्ड रूपी चाक कुंमार जन्या जे विष्णु ने दश अवतार लइने संकट सदा सहन कर्या जे रुद्रे हाथमां खोपड़ी लइने भिक्षाटन कर्युं तेम सूर्यें हमेशा आकाशमां भ्रमण कर्या फिरे छेती येवा कर्मने नमस्कार छे ॥ ३१७ ॥

अवश्यं भावि भावानां प्रतिकारो भवेद्यदि ।
तदा दुःखैर्न लिप्येरनलरामयुधिष्ठिराः ॥३१८॥

प्रारब्ध प्रमाणे भोगवबु पड़ेछे, कदाचत अटका वेतो यणदुःख लेपायमान करतुं नथी जेमके नल, राम, युधिष्ठिर ॥ ३१८ ॥

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥३१९॥

अयोध्या, मथुरा, मायापुरी (हरद्वार) काशी, कांची, उज्जैन, द्वारिकापुरी, जगन्नाथपुरी ये सात मोक्षपुरी छे ३१९

येन यत्रैवं भोक्तव्यं सुखं वा दुःखमेववा ।
स तत्र बध्वा रज्वेव बलाद्दैवेन नीयते ॥३२०॥

जने जेजग्या पर सुख अथवा दुःख भोगवावुंछे। ते जग्या

T

पर जेम दोरडी थी कोई ने बांधी लइ जाय ते रीते दैवतेनेते स्थले लइजायछे ॥ ३२० ॥

नीचाश्रयोन कर्तव्यः कर्त्तव्यो महदाश्रयः ।
अजा सिंहप्रसादेन आरुढो गजमस्तके ॥३२१॥

नीचनो आश्रय नहीं करतां, मोटानोंज आश्रय करवो जेम बकरो सिंह ना प्रसादे हस्ती नीम स्तकनी पदवी पाम्यो । ३२१

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी
दैवं प्रधान मितिका पुरुषा वदन्ति ॥
देवं विहाय कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥३२२॥

उद्योगी पुरुष मनुष्यमां सिंह जेवोछे जेतेनेज लक्ष्मी प्राप्तथायछे निरुद्यमी पुरुष दैवनेज प्रधान मानेछे, परन्तु दैवने मुकीने शक्ति अनुसार उद्योग करयत्ने करीने जे सिद्धि न न थायतो पछी कोने दोष देवो ? ॥ ३२२ ॥

अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ।
अनाश्रया न शोभन्ते पंडिता वनिता लताः ॥३२३॥

मणिक उत्तमछे, पण कंचनना समागंम वगर शोभतुं नथी, तेज प्रमाणे विद्वान, स्त्री, अनेबेल ये सारा आश्रय वगर शोभता न थी (वृद्धि पावता नथी) ॥ ३२३ ॥

T

जामाता पुरुषोत्तमो भगवती लक्ष्मी स्वयं कन्यका ।
दूतोयस्य बभूव कौशिक मुनीर्यज्वावसिष्ठः स्वयम् ॥
दाताश्री जनकः प्रदान समये चैकादशस्याग्रहाः ।
किं भूमो भवितव्यतां हतविधे रामोऽपियातो वनम् ३२४

जमाइ पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी छे ने साक्षात् लक्ष्मी जेवी कन्याछे (सीताजीछे) तथा विश्वामित्र जेवादूतछे, वशिष्ठ जेवा गोरछे, ने जनक जेवातो कन्यादान आपनारछे जेजे समे लाभ भुवनमां जेजे वधाग्रहछे येवुं मुहुर्त लीधाछतां पण प्रारब्धनी वातशुं कहेवी के रामचन्द्र जी ने वनमां जवुं पड्यु ॥ ३२४ ॥

क्वचित्पाणी प्राप्तं घटितमपि कार्यं विघटय ।
त्यशक्यं केनापि क्वचिद घटभानं घटयति ॥
तदेयं सर्वेषामुपरीपरितो जाग्रति विधा ।
वुपालम्भः कोऽयं जनतनु धनोपार्जनविधौ ॥३२५॥

कोई वखते हाथमां आवेलुं काम चाल्युं जायछे । जें कोई वखते न जनीशके तेवुं काम वनीजायछे । तेवीरीते सौं ना विधि जाग्रत रहे लोछे, तो पछी, मनुष्य ने धन सम्पादन करवामां दोष को दोष कोने देवो ? ॥ ३२५ ॥

ऊद्योगः कलहः कण्डू द्युतं मद्यं परस्त्रीयः ।

T

आहारो मैथुनं निद्रा सेवनात्तु विवर्धते ॥ ३२६ ॥

उद्योग. कजीयो, खुजली, भुगार, दारुनुं व्यसन, पराई स्त्री, आहार, रति सुख, निद्रा, एटली वस्तुनुं जम जेम सेवन करेतेमवृद्धि थायेछे ॥ ३२६ ॥

खरं, श्वानं, गजं मत्तं रण्डां च बहु भाषिणीम्
राजपुत्रं कुमित्रं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥३२७॥

गधेड़ो. कुतरो, हाथी, (मदोन्मत्त) वाचाल स्त्री, राज-कुमार, अने नठारो मित्र ए सर्वनो दूर थी त्याग करवो ३२७

कुशला शब्द वर्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः ।
कलौ वेदांन्तिनो भांन्ति फाल्गुने बालकाइव ॥३२८॥

फाल्गुणमां जेम बालको मोढे थी मात्र बोले छे पण विषयों मां अशक्त तेमज कलियुग मां वेदान्तिओं वातों करवामां कुशलछे, पणचालवामां न थी ॥ ३२८ ॥

परदारं परद्रव्यं परिवादं परस्य च ।
परिहासं गुरोः स्थाने चापल्यं च विवर्जयेत् ॥३२९

वीजानी स्त्री अन्यनुं द्रव्य, वीजानीसाथे वादविवाद, अन्य पुरुषनी मशकरी, अने मोटे ठेकाणो इहा इनको त्याग करवो ॥ ३२९ ॥

कोकिलानां स्वरोरूपं नारी रूपं पतिव्रत्तम् ।
विद्यारूपं कुरूपाणां क्षमारूपं तपस्विनाम् ॥३३०॥

T

कोयलनु रूप तेनो स्वर छे नारी नू रूप पतिव्रता छे, कुरूपानु रूप विद्या अने तपस्विनुं रूपते क्षमा छे ॥ ३३० ॥

पादपानां भयं वातात्पद्मानां शिशिरो भयम् ।
पर्वतानां भयं वज्र्रं साधुनां दुर्जनो भयम् ॥३३१॥

झाड ने पवननो भय छे, कमल ने शियालानो भय छे, पर्वतने वज्रनो भय छे अने साधु पुरुषने दुर्जननो भय छे ॥ ३३१ ॥

अतिपरिचयादवज्ञा संततगमनादनादरो भवति ।
मलये भिल्लपुरान्ध्री चन्दनतरुकाष्ठ मिन्धनंकुरुते ॥३३२।

अति परिचय राखवाथी मान भंग थई अनादर थाय छे, जेम मलयाचल पर्वतने विषे वसनारी भिल्लनी स्त्रीओ चंदनना काष्ठने जलाती छे ॥३३२॥

अनुचितकर्मारंभः स्वजनविरोधो बलीयसी स्पर्धा ।
प्रमदाजनविश्वासो मृत्युद्वाराणि चत्वारि ॥३३३॥

न करवानु काम करवुं सगां संबधी साथे विरोध, बलवान् साथे स्पर्धा (इज्जत) करवी ने स्त्री जात थी विश्वास राजनों ये चार मृत्युनां घर छे ॥ ३३३ ॥

आपद काले मित्रपरीक्षा शूरपरीक्षारणाङ्गणेभाति ।
विनये वंशपरीक्षा स्त्रयः परीक्षा निर्धने पुंसि ॥३३४॥

आपद आव पडे त्यार मित्रनी परीक्षा थाय छे, तेम शूरनी

T

परीक्षा युद्धना स्थान ऊपर, नें कुलनी परीक्षा तेना विनय उपरथी, नें स्त्रीनी परीक्षा दुर्बल अवस्थामां थाय छे ॥ ३३४ ॥

मुखं पद्मदलाकारं वाचा चंदनशीतला ।
हृदयं क्रोधसंयुक्तं त्रिविधं धूर्त लक्षणम् ॥३३५॥

मुख कमलना पुष्प जेवुं वाणी चन्दनना जेवी शीतल अने हृदय क्रोध युक्त ये त्रण धुर्तनां लक्षण छे ॥ ३३५ ॥

संपूर्णेऽपि तडागे काकः कुम्भोदकं पिबति ।
अनुकूलेपि कलत्रे नीचः परदारलम्पटो भवति॥३३६॥

संपूर्ण तलाव भर्युं होय तथापि कागडो स्त्रीनां मस्तक उपरनां घडामांथी पाणी पीए छे तेनी माफक नीच पुरुष पोताने अनुकूल स्त्री छतां परदारा सेवन करे छे ॥ ३३६ ॥

अबला यत्र प्रबला बालो राजा निरक्षरो मन्त्री ।
नहि नहि तत्र धनाशा जीवितआशा दुर्लभो भवति ३३७

ज्यां स्त्री बलवान होय राजा बालक होय मंत्री मूर्ख होय त्यां धननी आशा तो शेनी पण जीववानी आशा मे दुर्लभ जाणवी ॥ ३३७ ॥

इन्दुकैरविणिव कोकपटलीवाम्भोजिनीवल्लभं ।
मेघञ्चातकमण्डलीव मधुप श्रेणीवपुष्पव्रतम् ॥
माकन्दंपिक सुन्दरीव रमणो वात्मेश्वरं प्रोशितम् ।
चेतोवृत्तिरियं सदा नृपवरत्वांद्रष्टु मुत्कंठते ॥३३८॥

T

जेम कुमुदिनी चन्द्र ने जेवा इच्छा करेछे चक्रवाकनी पंक्ति सूर्य ने जेवा उत्कण्ठित छे। पपैयानी मण्डली मेघने जोवा उत्कण्ठा करेछे तेम भवरायो पुष्पना समूह ने जोवा इच्छेछे ने कोयल आंवा ने जोवा इच्छा राखेछे अने प्रोशित पति का परदेश मां गयेला पति ने जोवा इच्छेछे तेम अमारा चित्त नी वृत्ति सर्वदा तमने जोवा उत्कंठा करे छे ॥ ३३८ ॥

दोषाकरोऽपि कुटिलोपि कलंकितोपि ।
मित्रावसाव समयेपि हितोदयेऽपि ॥
चन्द्रस्तथापि हरवल्लभ तामुपैति ।
नैवाश्रितेषुगुण दोष विचारणा स्वात् ॥३३९॥

चन्द्रमा जोके दोषाकार छे कुटिल छे, कलंक वाणो अने मित्रनो अस्त पामवा वा समयमां उदय पामनार छे तोपण सदा शिव ने प्यारो छे एटले जे पोतानो आश्रित होय तेना गुण दोषनो विचार नहि करवो ॥३३९॥

अविवेकमति नृपति मंत्रिषु गुणवत्सु वक्रीतग्रीवः ।
यत्रखलाश्चप्रबला तत्र कथं सज्जना वसरः ॥३४०॥

ज्यां राजा तथा मन्त्री अविवेकी होय तथा गुणवाननी वात सांभलतां वांकी डोक करता होय अने दुष्टजन प्रवल होय त्यां सारा माणस नोज वसर क्यां थीज होय ॥३४०॥

मांन्धाता च महीपति कृतयुगा लंकारभूतोगतः ।

सेतुर्य्येनमहोदधौ विरचितः क्वासौदशा स्यान्तकः ॥
अन्येचापि युधिष्ठिर प्रभृतयो यातादिवं भूपते ।
नैकेनापि समङ्गता वसुमति नूनंत्स्यथा यास्यति ३४१

हे राज मांधाता राजा के जे सघली पृथ्वीनो पति अने सतयुग ना घरेणा जेवो हतो तेपण मरी गयो, रामचन्द्रजीके जेणे महासागर मां पाज वांधी अने रावण ने मार्यो तेपण हाल क्यां छे। वीजा युधिष्ठिर आदि राजाओपण स्वर्ग वासी थयाछे। ते माना कोई साथे पृथ्वी गई नथी पण तमारी साथे आवशे खरी ॥ ३४१ ॥

रामे प्रव्रजनं बलेर्नियमनं पांडोः सुतानां वनम् ।
वृष्णीनां निधनं नलस्य नृपते राज्यात्प्रणरिभ्रंशनम् ॥
कारागारनिशेवणञ्च मरणं सचिन्त्य लंकेश्वरो ।
सर्वंकालवशेन नश्यतिनरः कोवापरित्रायते ॥३४२॥

अर्थ—राम ने बनबास वली राजाने वन्दी पाण्डवोंने बनवास यादवों का नाश नल राजा नु पद भ्रष्ट रावण ने सहस्त्रार्जुन नु वन्दी खानु ने अन्ते राम ना हाथ थी मरण माटे सर्व लोको कालने लीधेज दुःखी थायछे । ३४२ ॥

सर्वेवर्णाः शाक्त सर्वे न च शैवा न च वैष्णवा ।
आदि शक्तिमुपासन्ते गायत्रिम् वेदमातरम् ॥३४३॥

T

अर्थ—सभी वर्ण के लोग शक्ति उपासक थे, न शैव थे न वैष्णव। आदि-शक्तिकी उपासना करने वाले थे। गायत्री वेद की माता मानी जाती थी। ३४३ ॥

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनच्छयापि संस्पृष्ट दहतेन किं पावकः ॥३४४॥

अर्थ—भगवान के स्मरण से पाप का हरणहोता है, चाहे दुष्ट स्वभाव का भी हो जैसे इच्छा बिना अग्नि को छूने से जला देती है ॥ ३४४ ॥

एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वाऽस्मिन्।
लोके जुहोतीयजते ॥
यस्तप्यते बहुनि वर्ष सहस्त्राण्यन्तु।
व देवास्य तद्भवति ॥ ३४५ ॥

अर्थ—हे गार्गी जा अविनाशी परमेश्वर ने जान्या बिना कोई हजारों वर्ष आ लोकमां होय याग तपस्या करे। तथापि ते स्थायी फल ने प्राप्त करतो नथी ॥ ३४५ ॥

यवोयत दक्षरंगार्ग्य विदित्वा स्मालोकान प्रैति सकृपण
अथयएतदक्षरं गार्ग्य विदित्वा
स्माल्लोकानप्रैति सब्राह्मणः ॥३४६॥

अर्थ—हे गार्गी जेमाणस अविनाशी परमेश्वर ने न जानता ए लोकमां मरी जाय, ते कृपापात्र अने दीन छे। अनेजे अवि-

T

नाशी परमेश्वर ने जाणि ने आ लोक माथी जायछे ते ब्राह्मण छे ।। ३४६ ।।

सुलभाः पुरुषा लोके सततंप्रियवादिनः ।
अप्रिय स्यापि पथ्यस्य श्रोतावक्ता च दुर्लभा ॥३४७

अर्थ—आ दुनियां मां हमेशा मोढे मीठू बोल नार घणामाण सों हैं सहेलाइ से मिले छे परन्तु कड्डुवु पण हितकर्ता वचन सांभल नार तेमज कहे नार मलवा मुशकिल छे । ३४७ ॥

संतोषः परमोलाभः सतसंग परमं धनं ।
विचारं परमं ज्ञानं शमं च परमं सुखं ॥३४८॥

अर्थ—सन्तोष तेजमोटो लाभ, सतसंग नी प्राप्ति तेज मोटी दौलत, सत्य असत्य नो विचार येज सारा मांसारूं ज्ञान अने श-मता तेज माटू सुखछे । ३४८ ॥

सर्पाः पिबंति पवनं न च दुर्बलास्ते
शुष्कैस्तृणैर्वन गजा बलि नो भवन्ति ।
कन्दैः फलै मुनिवरा क्षपयंति कालः ।
संतोष मेव पुरुषस्य परं निधान ॥३४९॥

अर्थ—सांप पवन पीते रहे छे पण दुर्बल थता नथी, हाथियों बन-ना सूखो घास खावा थी पण बल हीन थता नथी । श्रेष्ट मुनियों कन्द तथा फल ना आहार कर काल खपावेछे, मतलब के सन्तोष तेज माणसनों मोटो भण्डार छे ॥ ३४९ ॥

T

सा श्रोर्या नमदं कुर्यात सःसुखी तृष्णयोज्झितः।
तन्मित्रो यत्र विश्वासः पुरुषोयो जितेन्द्रियः ॥३५०॥

अर्थ—जेने दौलत मल्या छतां पणते वाबन अहंकार नथी तेज श्री मन्त जेणे तृष्णा जीती छे तेज सुखी जेनों विश्वास छे तेज मित्र अनेजेणे इन्द्रियों वश करीछे। तेज पुरुष छे। ३५०॥

समेशुचौ वन्हि बालुका विवर्जते शब्दजल। श्रयादिभिः
मनोनुकूले नतु चक्षु पोडने गुहानिवाश्रयणे प्रयोजयेत

अर्थ—एक सरखी शुद्ध अग्नि अने रेता विना शब्द वाणा अने मण्डपादि वाली जगा भी अथवा जे मन ने अनुकूल लागे। अने आखने पीड़ादायक न होय एवी निर्वात गुहा मां चित ने परमात्मा मां लगाड़वुं ।३५१॥

न दुर्जन साधुदशामुपैति बहुप्रकारैरपि शिक्षमाणः।
आमूलसिक्तः पयसा घृतेन
न निम्बवृक्षोमधुरत्वमेति ॥३५२॥

दुर्जनपुरुषको बहुप्रकार शिक्षा देने पर भी साधुदशा को प्राप्त नही होते है जेसे निम्बका पेड़ को मूलमें घृत ओर दूध का सिंचन करने पर भी मधुरता नही होती है ॥३५२॥

वापि कूप तडागानां आरामे सुरवेश्वनाम्।
उच्छेदने निशंको सविप्रो म्लेच्छमुच्यते ॥३५३॥

वावली कुंवा तलाव बगीचा रवेश वालामकान शंका रहीत जो नाश कर देता है सो ब्राह्मण म्लेच्छ कहलाता है ॥३५३॥

T

सूचना

प्रिय पाठकगण,

युद्ध के कारण कागज की मंहगी तथा अभाव होजाने से और मेरा स्वास्थ्य ठीक न रहने से पुस्तक छपाने में विलम्ब हुवा। फिर भी अब तक जो साहित्य विभाग की छपाई हो चुकी है। उसकी जिल्द बनवाकर इच्छुक जनों के समीप प्रस्तुत कर रहा हूँ। आशा है कि इसके अवलोकन से आप लोगों को सन्तोष होगा।

निवेदक—

स्वामी पूर्णानन्दतीर्थ

T

मुद्रक—

श्री धन्नूलाल, प्रबोध प्रेस, राजमन्दिर, काशी।

T